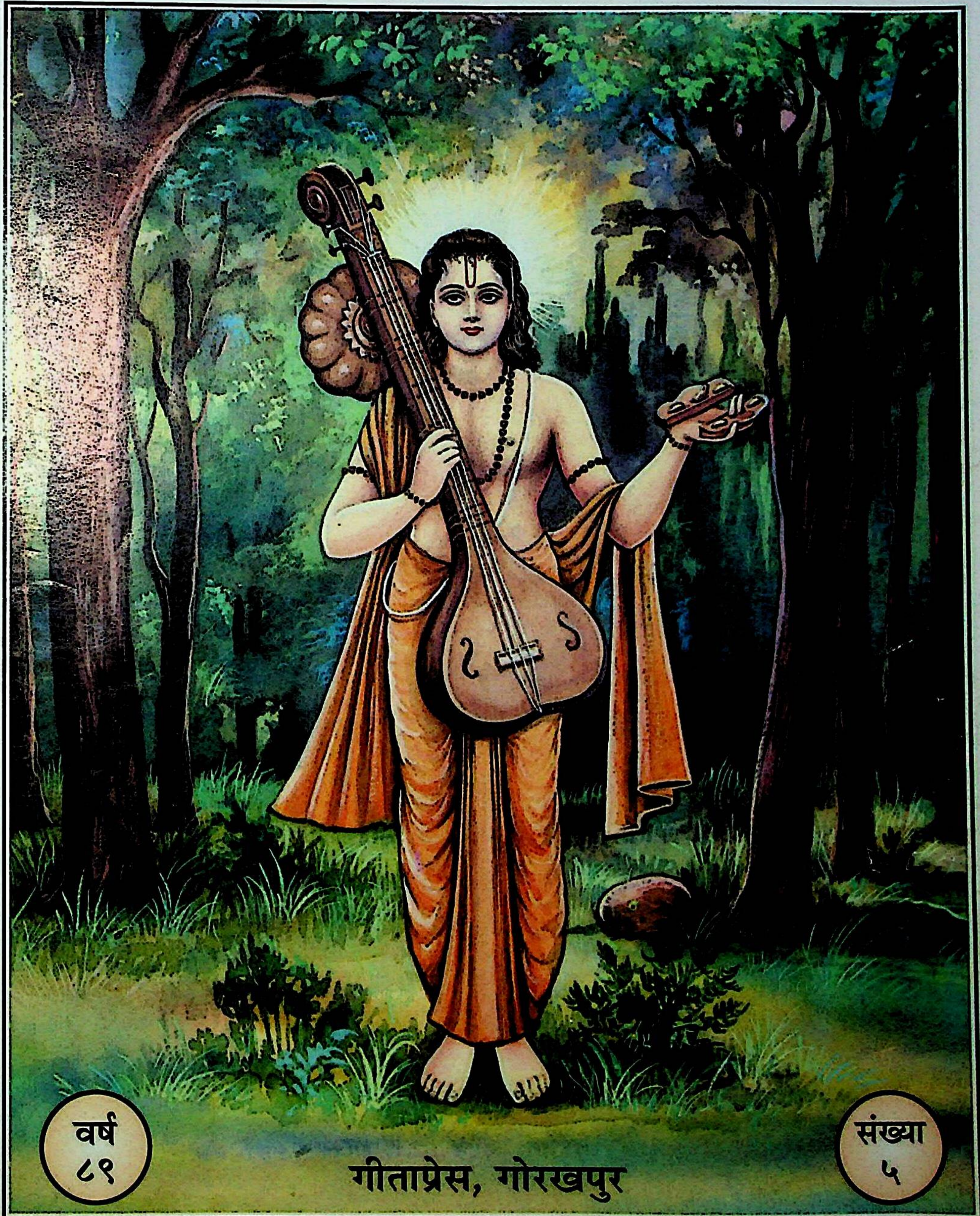
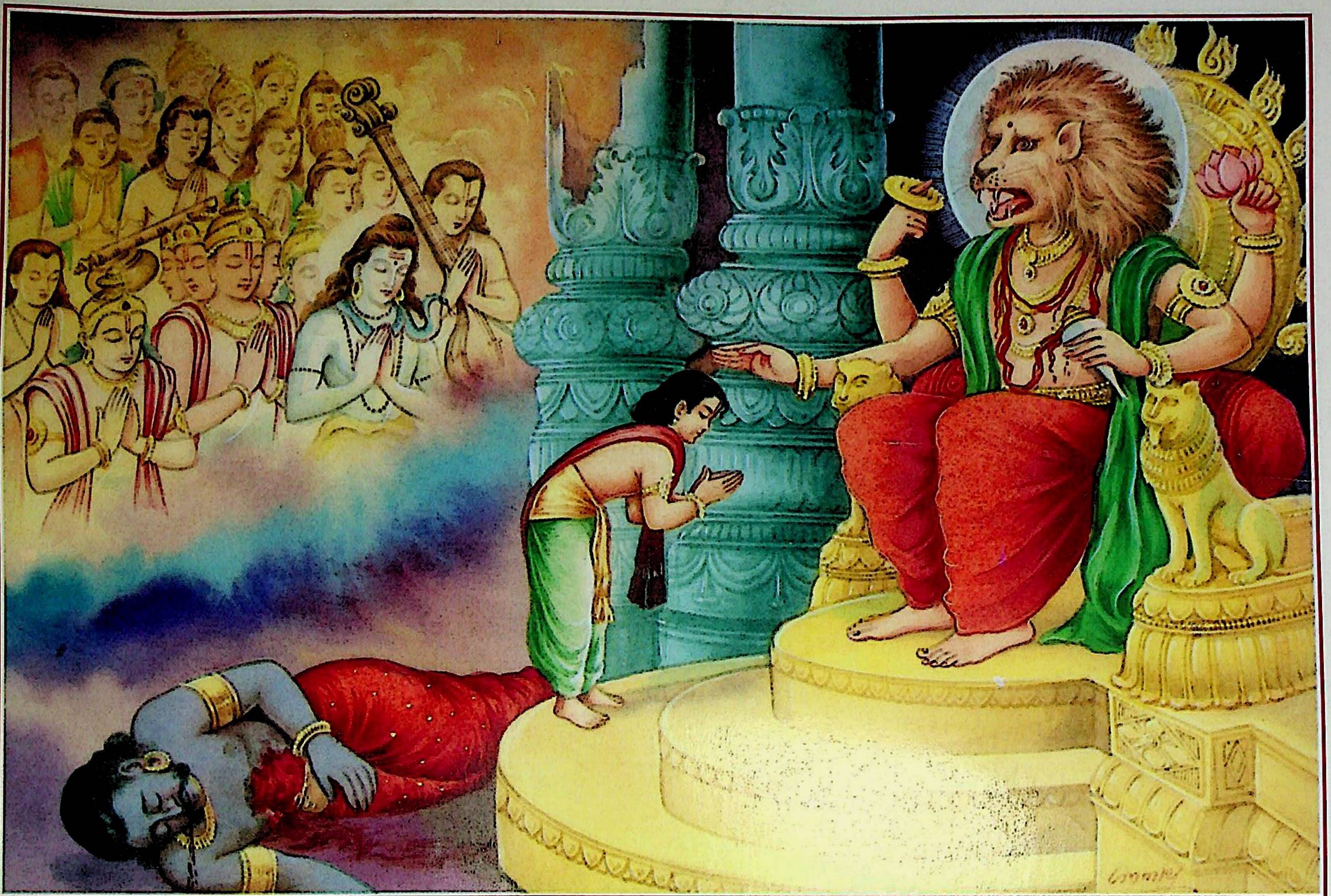
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

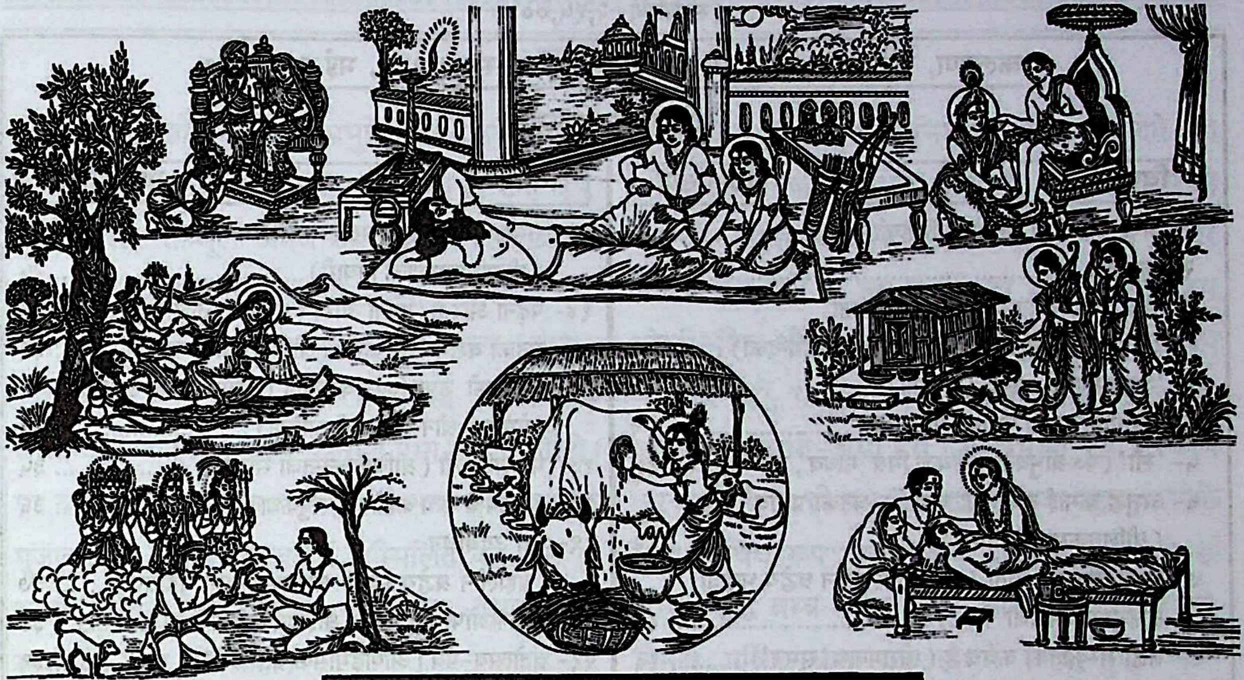


देवर्षि नारद



भक्त प्रह्लादद्वारा भगवान् नृसिंहकी स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मई २०१५ ई० | संख्या ५

पूर्ण संख्या १०६२

भक्त प्रह्लादद्वारा भगवान् नृसिंहकी स्तुति

नभ अनल समीरा धरनी तीरा इंद्रिय मन अरु प्राना।
गुण बिगुणहु जेते मन बचनेते सबमें तुम भगवाना॥
सुर नर मुनि जेते विनशहिं तेते जनमहि पुनि जग माँहीं।
विधि आदि सुरेशा शेष महेशा तुमको जानत नाहीं॥
यह गुनि मन संता बैठि एकंता तजहिं तुरत संसारै।
करि भक्तिहि रीती तुव पद प्रीती तुव पुन आशु सिधारै॥
यह सरल उपाई अति सुखदाई केहु के मन नहिं आवै।
ताते जग जीवा लहि दुख सीवा मंगल कतहु न पावै॥
प्रभु तुव पदबंदन सब दुख-द्वंद्वन अस्तुति तुव सुखदाई।
पूजनहु तिहारो अति अघहारो पद शुचिप्रद शुचिताई॥
तंव कथा सुहावनि प्रीति बढ़ावनि कलि-कलमष की हरनी।
भव पारावारा अतिहि अपारा ताकी तारन तरनी॥
ये षट्‌विधि सेवन बिना, कैसेहु भक्ति न होइ।
ताते कीजे मोहि निज, दास दुरित सब धोइ॥

—महाराज श्रीरघुराजसिंहजी

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, मई २०१५ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹ 2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—मन्दिरमें प्रभुके श्रीविग्रहके सामने हम विविध सामग्रियोंसे उनकी पूजा करते हैं, उन्हें धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल अर्पण करते हैं, उनकी आरती उतारते हैं, उनके लिये सुन्दर शय्या बिछाकर उन्हें शयन कराते हैं तथा फिर बड़े भावसे बीजना (पंखा) डुलाकर उनकी सेवा करते हैं। ऐसा करना बड़े सौभाग्यकी बात है; अवश्य-अवश्य ऐसा करना चाहिये। पर यदि इस पूजाके साथ ही हम विश्वरूप भगवान्‌की पूजाको भी अपनी दिनचर्यामें सम्मिलित कर लेते तो हमारा जीवन फिर पूजामय बन जाता, हमारी पूजा सर्वांगीण पूजा हो जाती।

याद रखो—यदि हृदयमें प्रभुकी ज्योति जग गयी है तथा उस ज्योतिके आलोकमें मन्दिरके देवता श्रीविग्रहके रूपमें विराजित प्रभु हमारी दृष्टिके सामने सर्वथा चिन्मय बन गये हैं, एक क्षणके लिये भी हमें यह अनुभूति नहीं होती कि ये धातु-पाषाण आदिसे बनी हुई मूर्ति हैं, तब तो कुछ कहना बनता ही नहीं; क्योंकि फिर तो हमारेद्वारा विश्वरूप प्रभुकी उपेक्षा सम्भव ही नहीं। हमारी दृष्टिमें विश्वकी सत्ता ही नहीं रहेगी, एकमात्र प्रभु-ही-प्रभु रहेंगे और यदि कहीं विश्वकी सत्ता रहेगी भी तो विश्वके अणु-अणुमें हमें अपने इष्टदेव ही भरे दीखेंगे। जितने आदरसे, जिस प्रेमसे हम मन्दिरमें भेंट चढ़ायेंगे, उतने ही आदरसे, उसी प्रेमसे विश्वरूप प्रभुको भी हम यथायोग्य, यथासम्भव उपहार समर्पित करेंगे; किंतु जबतक यह ज्योति नहीं जगी है, तबतक सावधान होकर हमें अपनी पूजाको विशुद्ध एवं परिपूर्ण बनानेकी चेष्टा करनी पड़ेगी।

हम देखते हैं कि पूजा समाप्त करनेके बाद जब हमें भूखकी अनुभूति होती है, तब हम स्वयं प्रसाद ग्रहण करते हैं तथा इष्ट-मित्रोंको भी प्रसाद देते हैं। हमें जब शीतका अनुभव होता है, तब हम अपने अंगोंको आवश्यक वस्त्रोंसे ढँकते हैं। जब हमारे शरीरमें रोग होते हैं, तब उनको दूर करनेके लिये हम ओषधियोंका भी सेवन करते हैं; किंतु ऐसा करते समय सभी तो नहीं, पर हममेंसे अधिकतर इस बातको भूल जाते हैं कि अभी-अभी हम जिन प्रभुकी पूजा मन्दिरमें कर आये हैं, वे ही प्रभु पुनः हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये विविध रूप धारण किये बाहर खड़े हैं। वे ही स्वच्छ शुद्ध वस्त्र धारण किये, सिरपर तिलक लगाये, निर्मल पवित्र धातु-पात्र हाथमें लिये हुए, संत-मण्डलीके रूपमें प्रसाद पानेकी शान्तिसे बाट देख रहे हैं तथा वे ही अपने अंगोंमें चिथड़ा लपेटे, धूलमें सने, टीनका टूटा डिब्बा हाथमें लिये, कंगाल बनकर कुछ भी देनेके लिये करुण पुकार मचा रहे हैं।

याद रखो—यदि हम प्रभुको इन सभी रूपोंमें पहचान पाते तो जो सुख हमें स्वयं प्रसाद पानेमें, जो आदर-प्रेम-भाव अपने इष्ट-मित्रोंको प्रसाद देनेमें होता है, उससे बहुत अधिक सुख एवं प्रेमकी अनुभूति भिखारीके टीनवाले पात्रमें भोजन परसते समय होती। जो रस हमें स्वयं ऊनी कपड़े ओढ़नेपर ठण्ड मिटनेसे प्राप्त होता है, उससे बहुत अधिक बढ़कर रस हमें उसे दीन-हीन, सर्दीसे ठिठुरते हुएको कपड़ा देनेमें प्राप्त होता। जो तत्परता अपने रोगको दूर करनेके लिये हममें होती है, उससे बहुत अधिक मात्रामें लगन उस रुग्ण अनाथ व्यक्तिकी समुचित व्यवस्था एवं सेवा करनेमें होती। पर हममें तो इनसे विपरीत भाव होते हैं। इसीलिये हमारी पूजा भी अधूरी ही रह जाती है।

'शिव'

सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क ४ पृ०-सं० ९ से आगे]

भगवान्‌का ध्यान कैसे किया जाय, इसके लिये ध्यानकी प्रक्रिया है। मान लें—भगवान् श्रीरामका भक्त है और वह भगवान् रामका ध्यान कर रहा है। विधि बतलायी जाती है। भगवान् सामने खड़े हैं। भक्तने पहले भगवान्‌के चरणोंका ध्यान किया, ध्यान करके मुग्ध हो गया कि भगवान्‌के चरण बहुत ही सुन्दर और बहुत ही कोमल हैं, उसमें भी अंगुलियोंकी शोभा और भी अधिक है, नाखूनोंकी ज्योति अलग ही दीख रही है। इस प्रकार भगवान् रामके चरण कोमल, सुन्दर, चमकीले और आकर्षित करनेवाले हैं। ऐसे ही उनके दोनों पिण्डली, घुटने और जंघा हैं। वे पीताम्बर पहने हुए हैं। पीताम्बर एकदम चमक रहा है। कमर पतली है, नाभि कमलके समान है, उदरके ऊपर तीन रेखाएँ हैं। भगवान्‌के गलेमें पुष्पोंकी माला सुशोभित हो रही है। मोतियों और रत्नोंकी माला भी पहने हुए हैं। भगवान्‌की दो भुजाएँ हैं। दायीं भुजामें बाण धारण किये हैं और बायीं भुजामें धनुष है, जिसकी डोरी कन्धेके ऊपर टँगी हुई है। पीछेमें बाणों-भरा तरकश है, जिसे तूणीर कहते हैं। भगवान्‌की छाती चौड़ी है। भुजा घुटने-पर्यन्त लम्बी है, भुजा ऊपरसे मोटी और नीचेसे पतली बहुत ही सुन्दर है, जैसे कोई सोलह वर्षका राजकुमार हो—ऐसी भगवान्‌की आयु है। मानो भगवान् जनकपुरके बगीचेमें राजकुमारके वेषमें घूम रहे हैं। हाथोंमें अंगूठी और कंगन पहने हुए हैं, गला बहुत ही सुन्दर है। ठोड़ी चमकीली है, ओठ भी लाल मणिकी तरह चमक रहे हैं। दाँतोंकी पंक्तियाँ सफेद मोतीकी पंक्तिकी तरह चमक रही हैं, हँस रहे हैं मानो मुख गुलाबके पुष्पकी तरह खिला हुआ है। उनकी वाणी बहुत ही सुन्दर, गम्भीर, कोमल, अर्थयुक्त, मनको मोहित करनेवाली, कानोंको अमृतके समान प्यारी है। शरीरसे बहुत ही मधुर सुगन्ध आ रही है और स्पर्श करनेसे शरीरमें रोमांच हो जाता है। उनका दर्शन नेत्रोंके लिये बहुत ही प्रिय है। नासिका बहुत ही सुन्दर, गाल बहुत ही चमकीले हैं एवं उनमें गुलाबी रंगकी झलक है। कानोंमें रत्नजटित स्वर्णके मकराकृत कुण्डल हैं। कान बड़े सुन्दर हैं, दोनों नेत्र खुले हुए हैं, मानो गुलाबके दो पुष्प खिले हुए हों। भृकुटी बहुत ही सुन्दर है और ललाट चमक रहा है। क्षमा, दया, शान्ति, समता, सन्तोष, सरलता-ज्ञान-वैराग्य आदि अनन्त गुण भगवान्‌के नेत्रोंद्वारा बाहरमें विकसित हो रहे हैं और मुखारविन्द एकदम खिला हुआ है, सिरके ऊपर केश एकदम चमक रहे हैं। स्वर्णका रत्नजटित मुकुट धारण कर रखे हैं। भगवान्‌का ऐसा अलौकिक स्वरूप हम देख रहे हैं। ऐसे देखते हुए उनमें जो गुण हैं, वे प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहे हैं। भगवान् आकाशमें स्थित होकर अपने नेत्रोंद्वारा हमलोगोंके ऊपर अपने गुणोंकी वर्षा कर रहे हैं। हृदयके भीतर गुणोंका समूह, गुणोंका सागर उड़ेल रहे हैं। वे गुण विकसित हो रहे हैं तथा नेत्रोंके द्वारा सारे संसारमें फैल रहे हैं और उन गुणोंके सागरमें हमलोग भी एकदम मग्न हो रहे हैं। भगवान्‌के ऐसे रूप और लावण्यको देखकर हम मुग्ध हो रहे हैं। उनका स्वरूप-लावण्य कामदेवसे भी बढ़कर है, कोटि कामदेवके मिलनेसे भी ऐसा स्वरूप नहीं हो सकता, भगवान्‌का ऐसा सुन्दर स्वरूप हमको आकर्षित कर रहा है, मानो भगवान् हमारे ऊपर जादू कर रहे हैं, भगवान्‌का दर्शन, स्पर्श, भाषण, वार्तालाप, चिन्तन—ये सभी अमृतमय, आनन्दमय, प्रेममय, रसमय हैं। हम अलौकिक रसका आस्वादन कर रहे हैं और मुग्ध हो रहे हैं, परंतु ऐसा ध्यान कभी-कभी होता है, यह साधारण बात है। इससे उच्चकोटिकी बात यह है कि ध्यानके साथ-साथ भगवान्‌का अलौकिक प्रभाव, भगवान्‌के स्वरूपकी सुन्दरताके साथ-साथ उनके अपरिमित

प्रभावकी स्मृति होती रहे। चरित्रोंकी स्मृति हो, उनके चरित्रोंके साथ गुण तो लगे हुए हैं ही। जैसे भगवान् कोई लीला कर रहे हैं। किसी प्रकारकी कोई चेष्टा कर रहे हैं। भगवान् श्रीराम मुनियोंके आश्रममें जाकर उनसे बात कर रहे हैं, उनकी वाणीमें जो कोमलता है, मधुरता है और बर्तावमें जो अलौकिकता है, उसमें दया भरी हुई है, प्रेम भरा हुआ है। उनका जाना केवल उन्हींके हितके लिये है, उसमें भगवान्‌का कोई स्वार्थ नहीं है। केवल उनके प्रेमके लिये, उनमें जो श्रद्धा है उनके लिये और संसारके हितके लिये ही उनका जाना है। समय-समयपर इस प्रकारका अनुभव होना और विशेष समयपर इस प्रकारकी स्मृति रहे तो यह भगवान्‌का सामान्य ध्यान है। इससे भी बढ़कर जो ध्यान होता है उसमें भगवान्‌का ध्यान प्रायः लगा ही रहता है। उसमें भूल बहुत ही कम होती है। भूल होनेसे वह एकदम व्याकुल हो जाता है, उसको बर्दाश्त नहीं कर सकता। चलते, उठते-बैठते, खाते-पीते सब समय उनका ध्यान बना रहता है एवं एकान्तमें और विशेषरूपसे हो जाता है तथा बाकी समय साधारण रूपसे रहता है। यह भगवान्‌का मुख्य ध्यान है। जब इससे और आगे बढ़ जाता है तब सब समय वह ध्यान एक-सा ही रहता है। चाहे एकान्तमें बैठकर ध्यान करे, चाहे चलते, उठते-बैठते, खाते-पीते करे, भगवान्‌की मोहिनी मूर्ति उसके हृदयसे दूर होती ही नहीं। जैसे गोपियोंके हृदयसे भगवान् कृष्णकी मूर्ति कभी दूर होती ही नहीं। वहाँ अनन्य श्रद्धा है, अनन्य प्रेम है, अनन्य ध्यान है, अनन्य चिन्तन, अनन्य स्मरण है। जब इससे भी और बढ़कर हो जाता है तो वह ध्यानमें ऐसा मुग्ध हो जाता है कि उससे वियोग हो ही नहीं सकता। फिर उसका ध्यान वह करता नहीं, अपने-आप ही होता है, उससे छूट नहीं सकता, उसकी सामर्थ्य नहीं कि उसे छोड़ सके। ऐसा ध्यान स्वाभाविक ही अपने-आप होता रहता है। उस समय उस ध्यानको वह भगवान्‌के साक्षात् मिलनेसे भी बढ़कर समझता है। भगवान् साक्षात् आकर दर्शन दें, इस बातकी उसे आकांक्षा नहीं रहती। वह तो उस ध्यानको ही सबसे बढ़कर समझता है। वह तो सब समय उस ध्यानमें ही मुग्ध रहता है। भगवान्‌को गरज हो तो आकर दर्शन दें, उसे गरज नहीं। दोनोंमें जिसमें अधिक प्रेम होगा, जो प्रेमकी अधिक इज्जत करेगा, प्रेमको जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझेगा, उसे ही ज्यादा गरज पड़ेगी, उसीको आना पड़ेगा। भक्तको क्या गरज? इसी प्रकार विरहकी व्याकुलता भी है। विरहकी व्याकुलता—दूसरी लाइन है। विरहकी व्याकुलतामें ध्यान तो इसी प्रकार होता है, किंतु वह भगवान्‌का साक्षात्कार—दर्शन चाहता है, दर्शनके बिना उसे बहुत व्याकुलता होती है। जैसे युवा स्त्रीका पति विदेशमें हो और वह पतिके वियोगमें समय-समय व्याकुल भी होती है, रोती भी है। इस प्रकारकी व्याकुलता साधारण व्याकुलता है। भगवान्‌के विरहकी व्याकुलतामें तो चैन ही नहीं पड़ता। जैसे भगवान्‌के विरहकी व्याकुलतामें भरतजीकी दशा हुई। जब ऐसी दशा पराकाष्ठाको पहुँच गयी तब—

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

(रा०च०मा० ७। १क)

रामका वियोग एक सागर है, उसमें भरतका मन मगन हो रहा है। उस समय जैसे डूबते हुएके लिये नौका आ जाती है, इसी प्रकार ब्राह्मणका रूप धारण करके हनुमान्‌जी वहाँ आ पहुँचे और खबर दी कि भगवान् श्रीराम सीताजी और लक्ष्मणजी-सहित आ रहे हैं। जैसे प्यासे आदमीको अमृत पिला दिया जाय और उसे जो आनन्द हो, उससे भी बढ़कर भरतको आनन्द हुआ। जैसे तड़फती हुई मछलीको जलमें डाल दिया जाय तो मछलीको जो आनन्द होता है, उससे भी बढ़कर आनन्द भरतजीको हुआ। ये सब उदाहरण उनके लायक नहीं हैं, इसके अनुरूप तो कोई उदाहरण ही नहीं है।

भगवान्‌के अन्तर्धान होनेके बाद गोपियाँ विरहमें व्याकुल होकर उन्हें वनमें ढूँढ़ती रहीं। वह बहुत ही उच्चकोटिकी व्याकुलता है। उससे भी बढ़कर वह व्याकुलता है, जब इतनी व्याकुलता बढ़ गयी कि उनके प्राण जानेकी तैयारी हो गयी, तब भगवान् फिर प्रकट हुए। भगवान्‌की व्याकुलतामें चैन नहीं पड़े, भोजनकी रुचि ही न रहे, रातमें नींद नहीं आये, दिनमें कोई चीज अच्छी नहीं लगे, खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगे। केवल भगवान्‌के सिवाय दूसरी वस्तु अच्छी लगे ही नहीं। ऐसेमें भगवान् रह नहीं सकते, तुरंत ही प्रकट हो जाते हैं। पहले साधारण ध्यानकी बात कही गयी, उसके बाद ऐसा ध्यान करना नहीं पड़ता, अपने-आप होता ही रहता है, वह ध्यानकी ऊँची श्रेणी है। यहाँतक विरहमें व्याकुलता और प्रेममें अधीरता दोनोंकी एक-सी ही बात है। वहाँसे अलग-अलग लाइन हो गयी।

प्रेमी तो आनन्दमें मुग्ध हो गया और ध्यान ही चाहता है, भगवान्‌को नहीं चाहता तथा विरही भगवान्‌का साक्षात् दर्शन करना चाहता है। अगर भगवान् प्रकट नहीं होते तो वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। विरहमें व्याकुलताकी प्रधानता है तथा प्रेममें आनन्दकी प्रधानता है, प्रसन्नताकी प्रधानता है। सभी जगह उसके लिये उदाहरण तैयार हैं। जैसे आनन्दकी मुग्धतामें प्रह्लाद, सुतीक्ष्ण हैं। तुलसीकृत रामायणमें सुतीक्ष्णका जो स्वरूप बताया, उसके अनुसार वे भगवान् रामके ध्यानमें मस्त हो गये। भगवान्‌के आनेपर भी भगवान्‌का ध्यान छोड़ना नहीं चाहते। ध्यानको भगवान्‌के दर्शनोंसे भी बढ़कर समझ रहे हैं। जैसे सूरदास कहते हैं कि मुझे पुनः सूरदास बना दो ताकि केवल आपका ध्यान बना रहे और कुछ भी नहीं चाहता। जैसे प्रह्लाद भगवान्‌के जप और ध्यानमें मस्त रहे, भगवान्‌के आनेके लिये भी प्रार्थना नहीं करते। जो भगवान्‌के प्रेम और ध्यानमें, आनन्द और शान्तिमें मुग्ध हो रहे हैं, वे भगवान्‌की भी इच्छा नहीं करते। भगवान् अपने-आप बिना बुलाये आते हैं।

विरहकी व्याकुलताका मार्ग भरतजी-जैसा है। वे विरहमें इतने व्याकुल हैं कि बिना भगवान्‌के पहुँचे वे जीवित नहीं रह सकते। जैसे गोपियाँ—गोपियाँ विरहमें इतनी व्याकुल हैं कि वे बिना भगवान्‌के आये जी नहीं सकतीं। जैसे रुक्मिणी—भगवान् रुक्मिणीजीके विवाहके समय पहुँचे और उन्हें उठाकर रथमें बैठाकर ले आये। यदि वे नहीं पहुँचते तो रुक्मिणी विरहमें व्याकुल होकर प्राणोंका त्याग कर देतीं। जैसे भगवती सीता—सीता रावणकी अशोकवाटिकामें इतनी व्याकुल हो रही हैं कि यदि भगवान् वहाँ नहीं पहुँचते तो वे जी नहीं सकती थीं। इसी प्रकार जहाँ-कहीं भी व्याकुलताका प्रकरण आता है, उससे ये बातें समझ लेनी चाहिये। इसी प्रकार आनन्दमें जो मनुष्य मुग्ध हो जाता है, वहाँ भगवान्‌से भी बढ़कर भगवान्‌का ध्यान मालूम देता है। वास्तवमें भगवान्‌का साक्षात् दर्शन भगवान्‌के ध्यानसे भी बहुत ही बढ़कर है, किंतु उस समय वह ध्यानमें इतना मुग्ध रहता है कि वह साधक ध्यानको इतना बढ़कर समझता है और उसे इतना विश्वास है कि जैसे मैं भगवान्‌को चाहता हूँ वैसे ही भगवान् भी मुझे चाहते हैं। मैं तो भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकता, पर भगवान् तो पहुँच सकते हैं, अतः मुझे बुलानेकी क्या जरूरत है। जहाँ प्रेम है, वहाँ अपने-आप ही आयेंगे।

अबतक भगवान्‌के प्रेमकी बात कही, भगवान्‌के विरहकी भी कुछ बात कही। अब भगवान्‌के मिलनेकी इच्छाकी बात कही जाती है—

भगवान्‌के मिलनेमें जैसे भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान साक्षात् कारण है, इसी प्रकार भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा भी कम नहीं है, बल्कि उससे बढ़कर हम कह सकते हैं। भगवान्‌का भजन करनेसे, ध्यान करनेसे, सत्संग करनेसे जैसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ता है, इसी प्रकार भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा करनेसे भी भगवान्‌में प्रेम बढ़ता है और भगवान्‌में प्रेम होनेसे ही मिलनेकी इच्छा होती है, यह अन्योन्याश्रित है। जैसे

चित्तमें वैराग्य होनेसे साधन तेज होता है और साधन तेज होनेसे वैराग्य उत्पन्न होता है, इसी प्रकार साधन तेज होनेसे भगवान्‌में प्रेम होता है और भगवान्‌में प्रेम होनेसे साधन तेज होता है। यदि हम यह कहें कि जप और ध्यानकी इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा होनी चाहिये, लगन होनी चाहिये, किंतु भगवान्‌के मिलनेकी लगन होगी तो भजन-ध्यान तो अपने-आप ही होगा। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि भगवान्‌के मिलनेकी खूब लगन होनी चाहिये। भगवान्‌के मिलनेकी तीव्र इच्छा भगवान्‌के प्राप्त होनेका खास उपाय है। भगवान्‌के मिलनेकी एक तो साधारण इच्छा होती है, एक होती है गौण इच्छा और एक होती है विशेष इच्छा। इस प्रकार इच्छाके कई भेद हैं। इस समय अधिकांश मनुष्योंकी सांसारिक भोग-पदार्थोंकी—कंचन, कामिनी, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, शरीरका आराम, भोग आदिकी तो मुख्य इच्छा है और भगवान्‌के मिलनेकी गौण इच्छा है; क्योंकि बहुतसे लोग तो ऐसा समझते हैं कि भगवान्‌का मिलना कठिन है। अत: वे निराश-से हो रहे हैं। बहुतसे जो नास्तिक हैं, ऐसा समझते हैं कि भगवान् हैं ही नहीं, न कभी मिले हैं और न कभी मिलेंगे, ये सब फालतू बातें हैं, उनकी तो कभी इच्छा हो ही नहीं सकती। जिनकी दृष्टिमें भगवान् हैं ही नहीं, उनमें मिलनेकी इच्छा क्यों होगी और जिनके हृदयमें यह इच्छा है कि भगवान् हैं तो सही किंतु हम उसके लायक नहीं, हम कमजोर हैं और जिनके ये विचार हैं कि भगवान् हैं; मिल सकते हैं पर हमारा इतना साधन नहीं है, हम कमजोर हैं, इस कारण वे निराश हो जाया करते हैं, किंतु यह उनकी गलती है। हमको हमारी तरफ क्यों देखना चाहिये? हमको तो भगवान्‌की तरफ, भगवान्‌के विरदकी तरफ देखना चाहिये, भगवान्‌के स्वभावकी तरफ देखना चाहिये। जो आदमी भगवान्‌की तरफ देखता है, वह कभी निराश नहीं होता। जैसे भरतजी कहते हैं कि—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

भगवान् अपने दासोंके दोषकी तरफ नहीं देखते, उनका स्वभाव बड़ा ही कोमल है। वे दीनोंके बन्धु हैं और इसीके भरोसेपर भरतजीका यह भाव है कि भगवान् मुझे मिलेंगे। इससे भी बढ़कर जब और अधिक इच्छा हो जाती है कि भगवान्‌से मिले बिना वे जी नहीं सकते। भगवान्‌के प्रेममें ऐसा हो कि भगवान्‌का वियोग बर्दाश्त नहीं कर सके और भगवान्‌के बिना एक क्षण भी उसके प्राण रह नहीं सके। जब ऐसी अवस्था हो जाती है तब वह तीव्रतर अवस्था कहलाती है। जब तीव्रतम इच्छा हो जाती है, भगवान् उसी समय आ ही जाते हैं फिर रुक नहीं सकते। एक क्षण भगवान् नहीं आवें तो प्राण रह ही नहीं सकते। भगवान्‌के मिलनेकी तीव्रतम इच्छा होनी चाहिये, फिर भगवान् नहीं रुक सकते। तीव्रतरमें भी आ सकते हैं, पर तीव्रतममें तो एक क्षण भी नहीं रुक सकते। इस प्रकार भगवान्‌की व्याकुलताका रूप आपको बतलाया। [समाप्त]

'शरण तिहारी आयो'

(श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश')

मैं कामी काम सतायो।
विषयन लिपट रह्यो निशि वासर कबहुँ न हरि गुण गायो॥
झूठ कपट पाखंड पाप कूँ रहत सदा अपनायो।
हरिजन विमुख रह्यो तन मन सौं सत् संगति बिसरायो॥
लोभ पाश सौं बंध्यो रैन दिन सदा चित्त ललचायो।
सब परिणाम निराशामय लख सिर धुनि धुनि पछतायो॥
अशरणशरण पतितपावनप्रभु शरण तिहारी आयो।
प्रणतारतिभंजन यदुनन्दन हिय 'गोपेश' लगायो॥

'लौ'

(पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०)

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जगमें रहैं, हरिको भूलत नाहिं॥

विवाहिता स्त्री मायकेमें रहते हुए जिस प्रकार मन, चित्त और प्राणसे अपने पतिका ही स्मरण करती रहती है, उसी प्रकार इस संसारमें रहते हुए भी हम अपने प्राणाराम जीवनधन हरिका ही स्मरण करते रहें—यही सभी सन्तों और समस्त धर्मग्रन्थोंके उपदेशका सारतत्त्व है। जीवकी यही साधना है। मनुष्यका यही परम कर्तव्य, सर्वोत्तम धर्म है। मनको हरिमें डालकर मस्त हो जाना ही आनन्दकी चरम अवस्था है। जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत, सेवा, दान, सत्संग, सदाचार—सभी प्रकारके सत्कर्मोंका फल है श्रीवासुदेवका अखण्ड स्मरण। यह स्मरण ही भगवान्‌के चरणोंमें सच्ची प्रणति है; यह स्मरण ही सर्वात्मसमर्पणकी सच्ची अभिव्यक्ति है। घनीभूत अखण्ड स्मरणकी हँसती हुई ज्योतिका नाम है 'लौ'। साधनाका प्राण है स्मरण और 'लौ' है स्मरणकी आत्मा।

'लौ' का साधारण अर्थ है दीपकका जलता हुआ प्रकाश। दीयेमें तेल भर दिया जाता है, बत्ती डाल दी जाती है और सलाईसे उसे एक बार जला देते हैं। फिर जबतक तेल दीयेमें है, बत्ती बनी हुई है और बाहरके आँधी-तूफानसे वह सुरक्षित है, तबतक वहाँ प्रकाश बना रहेगा, लौ जलती रहेगी। ध्यान इस बातका रखना होगा कि तेल समाप्त न होने पाये, बत्ती बुझने न पाये और जहाँ अखण्ड दीपकी बात है, वहाँ तो सतत सावधान रहना ही पड़ेगा। एक क्षणकी विस्मृतिमें दीपकके बुझ जाने और घोर अन्धकारके घिर आनेकी आशंका है।

ठीक यही बात अन्तरकी 'लौ' के सम्बन्धमें है। वहाँ भी सतत सावधान रहना पड़ता है। एक पलके लिये भी वृत्ति बहिर्मुख हुई नहीं कि सब कुछ मिटा। मन, प्राण, चित्त, बुद्धि, आत्मा—सभी श्रीहरिके चरणोंसे झरते हुए मकरन्दका पान करते रहें। वहीं, उस परम दिव्य स्पर्शकी पावन अनुभूतिमें बेसुध बने रहें। बाहर आनेका ध्यान भी न रहे। बाहरके किसी भी पदार्थके अस्तित्वका भान भी न हो। कोई रूप आँखोंको लुभा न सके, कोई शब्द कानोंको मोह न सके। स्मृति सदा हरिके चरणोंको छूती रहे। प्राण सदा प्रभुके पाद-पद्मोंमें प्रणिपात करते रहें। यही अखण्ड जागरण है।

हंसा पाये मानसरोवर ताल तलैया क्यों डोलै?

वहाँके आनन्द और शोभाका वर्णन कैसे किया जाय? वहाँकी तो चर्चा भी नहीं हो सकती। बात चलते ही जो थहराने लगता है। जिसने एक बार भी उस रसका आस्वादन किया है, उसके लिये फिर वहाँसे हटना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है—

चरचा करी कैसे जाय।
बात जानत कछुक हमसों, कहत जिय थहराय॥
कथा अकथ सनेहकी उर नाहिं आवत और।
बेद समृती उपनिषदकों, रही नाहिंन ठौर॥

सच्चे प्रेमीको प्रियतमका स्मरण करना नहीं पड़ता। जबतक स्मरण करना पड़ता है, जबतक स्मरण और विस्मरणका युद्ध जारी है तबतक तो 'उस'से प्रेम क्या, परिचय भी नहीं हुआ ऐसा ही मानना चाहिये। पत्नी पतिके नामकी माला नहीं जपती। वह एकान्तमें आँखें मूँदकर, आसन मारकर, प्राणायाम आदि करके पतिके ध्यानमें डूबने नहीं जाती। वह सब कामोंसे छुट्टी लेकर सत्संगका सेवन, तीर्थोंमें घूमना, दान-पुण्य करना आदिमें अपने जीवनको इसलिये नहीं लगाती कि इनके फलस्वरूप उसे अपने पतिका स्मरण-ध्यान होगा। ऐसा करना उसके लिये अस्वाभाविक होगा। ऐसा करके वह स्वयं अपनी दृष्टिमें तथा लोगोंकी दृष्टिमें उपहासास्पद बनेगी। वह वैसा करने ही क्यों जायगी? अपने प्राणप्यारे प्रियतमके स्मरणके लिये भला योग, जप, तप, ध्यान और एकान्तकी आवश्यकता ही क्या है? वह स्मरण स्मरण नहीं, जो करनेसे हो। वह ध्यान ध्यान नहीं, जिसमें डूबनेके लिये घोर परिश्रम और कठिन प्रयत्न करना पड़े। वह प्रेम प्रेम नहीं, जिससे प्रेमास्पदकी सहज स्मृति न हो। वह प्यार

प्यार नहीं, जो बिना बुलाये, अपने आप ही उमड़-घुमड़कर हमारे हृदयके आँगनमें न बरसे।

बिरह जगावै दरदको, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरतको, पंच पुकारै पीव॥

रोम-रोममें प्रियतमकी पुकार है। रोम-रोम उसकी प्यारभरी स्मृतिमें पगे हुए हैं और कोई वस्तु है ही नहीं, जो चित्तको एक क्षणके लिये भी अपनी ओर आकृष्ट कर सके। प्रतिपल प्यारेकी स्मृति एक अजीब अदाके साथ आ-आकर प्राणोंको नहला जाती है, सराबोर कर जाती है। ध्यान जमानेके लिये त्राटक आदि मुद्राओंका सहारा नहीं लेना पड़ता और न आँखें ही बन्द करनी पड़ती हैं। उनके नूपुरोंकी ध्वनि सुननेके लिये कान मूँदने नहीं पड़ते और न पहाड़की खोहमें जाकर एकान्तवासकी ही आवश्यकता है; यहाँ तो—

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारौं॥

खुली आँखों अपने प्राणेश्वरको देखूँ तभी तो देखना है। खुले कान उनकी वंशी और नूपुरकी ध्वनि सुन सकूँ तभी तो सुनना है। सारे रूप, विश्वके विविध रूप उस एक अपरूप रूपमें पलट जाय; जगत्‌का सारा कोलाहल, हाहाकार और चीत्कार मुरलीकी मधुरध्वनि होकर हमारे कानोंमें समा जाय; जो कुछ सुनूँ, देखूँ, स्पर्श करूँ सभीमें प्राणवल्लभका मौन निमन्त्रण स्पष्ट दीख-सुन पड़े तब तो समझना चाहिये कि उनके प्रेमका आस्वादन हमारे प्राणोंने किया है। नहीं तो, सब कुछ कोरा हठयोग ही है।

एक क्षणके लिये भी जिसे हरिका स्पर्श मिल गया, वह उस रसको पूरे पिये बिना रह कैसे सकता है? वहाँ तो पग-पगपर एक अद्भुत आकर्षण बलात् प्राणोंको किसी 'अपने' की ओर खींचे लिये जा रहा है और इस मार्गमें चलते हुए एक विचित्र उल्लास संगी बना रहता है। वहाँ मिलन और विरहका अद्भुत सम्मिश्रण है। वह अखण्ड मिलन एवं आमरण विरहकी अवस्था है। यहाँ मिलन और विरह दोनों घुले-मिले हुए हैं। इस स्थितिमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिकी गति है ही नहीं। यहाँ मायाकी मोहिनी नहीं चलती। यहाँ तो सतत जागरण है। यहाँकी बेहोशी संसारकी सारी बुद्धिसे परेकी है और इसीलिये संसारकी किसी भी वस्तुका आकर्षण वहाँ है ही नहीं। वहाँ तो परमरस, 'रसो वै सः' को पाकर संसारके विविध रसोंकी ओरसे सहज ही उपेक्षा हो जाती है। यह तो आत्मरतिकी सहज स्थिति है। यही सहज समाधि है।

परंतु इस स्थितिमें प्रवेश किया कैसे जाय? संसारके कोलाहलसे ऊपर उठकर, जगत्‌के विषयोंके मस्तकपर पैर रखकर हम उस परम प्रियतमके प्रेमका आस्वादन करें कैसे? यह स्थिति जनसाधारणके लिये तो अप्राप्य-सी ही दीखती है। परम प्रेमकी इस स्थितिमें प्रवेश करनेके लिये हमें एक बार प्राणपनसे लगना होगा। माता-पिताके प्यारमें पली हुई कन्या पतिकी परिणीता होकर पाणिग्रहण, ग्रन्थि-बन्धन और सिन्दूरदानके अनन्तर सदाके लिये, जन्म-जन्मान्तरके लिये अपने पतिकी हो जाती है। आश्चर्य होता है कि जिस घरमें वह इतनी सयानी हुई, वही घर उसके लिये पराया हो जाता है; और एक पुरुष, जिससे पहले वह सर्वथा अपरिचित थी, उसीकी वह एकान्ततः हो जाती है। वह अपना कुल, गोत्र, नाम सब कुछ पतिके कुल, गोत्र और नाममें लय कर देती है। यह प्रायः हम सभीका देखा हुआ, अनुभव किया हुआ रहस्य है।

ठीक वही बात यहाँ भी है। जगत्‌के प्रपंचोंमें पला हुआ प्राणी, जगत्‌के विषयोंमें रचा-पचा पुरुष एक क्षणके इस विद्युत्-स्पर्शमें अपना लोक-परलोक, पाप-पुण्य, सुख-दुःख—अपना सब कुछ हरिके चरणोंमें निवेदित कर सदाके लिये 'उस' का बिना मोलका चेरा हो जाता है। खेल-खिलवाड़में ही वह पहले इस ओर आनेको ललकता है परंतु एक बार जहाँ इधर पैर रखा कि फिर अपना सर्वस्व अर्पित कर देनेकी ही सनक सवार हो जाती है। यह विवशता भी कितनी दिव्य है!

'पिय-परिचय' की वह दिव्य बेला साधकके लिये परम महोत्सवकी बेला है। 'परिचय' हो जानेपर समर्पण करना नहीं पड़ता। वह आप-ही-आप हो जाता है। वहाँ

चारों ओरसे संयम नहीं करना पड़ता। पियके प्राणमें प्राण घुल-से जाते हैं, अतएव वहाँ सहज एकाग्रता होती है। वहाँ सब धर्मोंके बन्धनको छोड़ने नहीं जाना पड़ता; **'सर्वधर्मान्परित्यज्य'** सुनना नहीं पड़ता। सभी धर्म आप-ही-आप छूट जाते हैं। सभी धर्म अपना फल देकर, अपनेको उसके प्रियमिलनमें बाधक समझकर चुपचाप छिप जाते हैं—और वहाँ साधक अपने प्रियतमका प्रेमास्पद बनकर उसके परम प्रेममें अहर्निश छका रहता है।

जिसे मैं चाहता हूँ, वह एक बार मेरी ओर निहारे—यह मानवहृदयकी सहज दुर्बलता है। अपने प्रियतमका प्रेम प्राप्त करना प्रेम-साधनाकी एक छिपी हुई साध है और वहाँ तो प्रियतमकी ओरसे प्रेमकी अखण्ड वर्षा होती रहती है, जिसमें प्रेमीके प्राण सदा नहाते रहते हैं। यही बेखुदीकी हालत है।

हमन हैं इश्क मस्ताना, हमनको होशियारी क्या?
रहैं आजाद या जगसे, हमन दुनियासे यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारेसे, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, हमनको इन्तजारी क्या?

हृदयदेशमें छिपा हुआ वह कितनी दूर सर्वथा अपरिचित-सा था। अन्तरका पट हटा और वह सामने आया और सामने आनेपर तो हम सभी वही गायेंगे जो मीराने गाया था—

ऐसे पियै जान न दीजै हो।
चलो री सखी! मिलि राखिये नैननि रस पीजै हो॥

युग-युगसे, जन्म-जन्मसे जिस प्राणाराध्यकी खोजमें मेरी आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, एक रूपसे दूसरे रूपमें, एक नामसे दूसरे नाममें ढलती आयी है, उस परम प्रियतमको पाकर अब क्यों छोड़ना? आओ, उसे सदाके लिये प्राणोंमें छिपा लें और आँखोंकी कोठरीमें पुतलीका पलंग बिछाकर और बाहरसे पलकोंकी चिक डालकर उसके रसको पीते रहें। इसके आगे अब करना ही क्या रहा?

अशुद्ध कमाई तथा शुद्ध कमाईके धनका प्रभाव

सन्त अबुल अब्बास अपने उपदेशमें कहा करते थे—प्रत्येक व्यक्तिको अपने हाथोंसे परिश्रम करके उस कमाईसे जीवन-यापन करना चाहिये। ईमानदारीकी कमाईसे ही बरकत होती है। वे स्वयं टोपियाँ सिलते तथा उन्हें बेचकर जो धन मिलता, उसमेंसे आधा जरूरतमन्दको दे देते और आधेसे स्वयं अपना खर्चा चलाते।

एक दिन उनका एक धनिक भक्त दर्शनोंके लिये आया। उसने कहा—'बाबा! मैं अपने कमाये धनमेंसे कुछ धन दान करना चाहता हूँ। मैं दान किसे दूँ?' सन्तने कहा कि जिसे जरूरतमन्द समझो, उसे दे दो।

धनिकने एक वृद्ध भिखारीको देखा तथा उसे सोनेकी एक मोहर दे दी। अगले दिन धनिक सड़कपर जा रहा था कि उसने उस भिखारीको दूसरे भिखारीके पास बैठा देखा। उसने दूसरे भिखारीसे कहा—'कल एक दानी व्यक्ति यहाँ आया था, उसने मुझे सोनेकी मोहर दी, मैंने उसे बेचकर खूब बढ़िया खाना खाया, शराब पी तथा रातको अय्याशी की।' धनिकने यह वार्तालाप सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह सन्त अब्बासके पास पहुँचा तथा यह बात उन्हें बतायी।

सन्त अब्बास उसकी बात सुनकर मौन हो गये। उन्होंने अपनी टोपियोंकी कमाईका एक सिक्का उस धनिकको दिया और बोले—'इसे किसी याचकको दे देना और उसके पीछे-पीछे जाकर देखना कि वह इसका क्या करता है।' धनिकने वह सिक्का एक याचकको दे दिया।

याचक सिक्का लेकर जंगलकी ओर गया तथा उसने थैलेमें छिपाये पक्षीको उड़ा दिया। धनिकने पूछा—'तुमने यह क्या किया?' वह बोला—'मेरा परिवार कई दिनसे भूखा था। मजबूरीमें खानेके लिये पक्षीको पकड़कर लाया था। अब तुम्हारे दिये सिक्केसे भूख मिट जायगी, इसलिये पक्षीकी हत्याका पाप मोल क्यों लूँ।'

धनिक समझ गया कि उसने छल-कपट तथा गलत तरीकेसे अर्जित धन वृद्ध भिखारीको दिया तो उसने उसका दुरुपयोग किया और सन्तजीके ईमानदारी-मेहनतसे कमाये धनने उस याचकको पक्षीके प्राणोंकी रक्षाकी प्रेरणा दी।—श्रीशिवकुमारजी गोयल

भजन क्यों नहीं होता ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् एक हैं, उन्हींसे अनन्त जगत्की—जगत्के समस्त चेतनाचेतन भूतोंकी उत्पत्ति हुई है, उन्हींमें सबका निवास है, वे ही सबमें सदा सर्वत्र व्याप्त हैं, अतएव उनकी भक्तिका, उनके ज्ञानका और उनकी प्राप्तिका अधिकार सभीको है। किसी भी देश, जाति, धर्म, वर्ण, वर्गका कोई भी मनुष्य—स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी विशुद्ध पद्धतिसे भगवान्का भजन कर सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है, परंतु भजनमें एक बड़ी बाधा है—वह बाधा है भगवान्में अविश्वास और संसारके भोगोंमें विश्वास; बस, इसी कारण—इसी मोह या अविद्याके जालमें फँसा हुआ मनुष्य भगवान्का कभी स्मरण नहीं करता और भोग-विषयोंके लिये विभिन्न प्रकारके कुकार्य करनेमें अपने अमूल्य जीवनको खोकर आगेके लिये भयानक दुःखभोगके अचूक साधन उत्पन्न कर लेता है। मनुष्यमें कमजोरी होना आश्चर्य नहीं, वह परिस्थितिवश पापकर्म भी कर सकता है, परंतु यदि उसका भगवान्पर विश्वास है, भगवान्के सौहार्द और उनकी कृपापर अटूट और अनन्य श्रद्धा है तो वह भगवान्का आश्रय लेकर पाप-समुद्रसे उबर जाता है और भगवान्की सुखद गोदको प्राप्त कर लेता है, परंतु जो भोगोंको ही जीवनका एकमात्र ध्येय और सुखका परम साधन मानकर उन्हींका आश्रय ले दिन-रात उन्हींके चिन्तन, मनन और उन्हींकी प्राप्तिके प्रयत्नमें तल्लीन रहता है, उसका जीवन तो पापमय बन जाता है, वह कभी भगवान्को भजता ही नहीं। भगवान्ने गीतामें दो प्रकारके पापियोंका वर्णन किया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
(७।१५)

'वे पापकर्म करनेवाले मनुष्य तो मुझको (भगवान्को) भजते ही नहीं, जो मनुष्य-जीवनके परम लक्ष्य (भगवत्प्राप्ति)-को भूलकर प्रमाद तथा विषयसेवनमें लगे रहनेकी ही मूढ़ताको स्वीकार कर चुके हैं, जो विषयासक्ति तथा विषयकामनाके वश होकर नीच कर्मोंमें ही लगे रहते हैं और अपने मानव-जीवनको अधम बना चुके हैं, मायाके द्वारा जिनका विवेक हरा जा चुका है और जो असुरोंके भाव—काम, क्रोध, लोभादिका आश्रय लेकर जीवनको आसुरी बना चुके हैं।' ऐसे लोग न तो भगवान्में श्रद्धा रखते हैं और न भजनकी ही आवश्यकता समझते हैं, वे दिन-रात नये-नये पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होते रहते हैं, विविध प्रकारके पाप करके गौरवका अनुभव करते और सफलताका अभिमान करते हैं एवं पापोंको ही जीवनका सहारा मानकर उत्तरोत्तर गहरे भव-समुद्रमें डूबते जाते हैं।

दूसरे वे पापी हैं, जो परिस्थिति या दुर्बलताके कारण बड़े-से-बड़ा पापकर्म तो कर बैठते हैं, परंतु वे उस पापको पाप समझते हैं, पाप करके पश्चात्ताप करते हैं, पाप उनके हृदयमें शूल-से चुभते हैं और वे उनसे त्राण पाने तथा भविष्यमें पापकर्म सर्वथा न बनें, इसके लिये सदा चिन्तित और सचेष्ट रहते हैं; ऐसे लोग कहीं आश्रय, आश्वासन न पाकर अन्तमें भगवान्को ही परम आश्रय मानकर करुणभावसे उनको पुकारते हैं। भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९।३०-३१)

'अत्यन्त दुराचारी (पापकर्मा मनुष्य) भी यदि मुझ (भगवान्)-को ही एकमात्र शरणदाता—परम आश्रय मानकर दूसरे किसीका कोई भी आशा-भरोसा न रखकर (पापनाश और मेरी भक्तिकी प्राप्तिके लिये) केवल मुझको ही भजता है, आर्त होकर एकमात्र मुझको ही पुकार उठता है, उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने एकमात्र मुझ (भगवान्)-को ही परम आश्रय मानने और केवल मुझको ही पुकारनेका सम्यक् निश्चय कर लिया है। केवल माननेकी ही बात नहीं, वह तुरंत

ही धर्मात्मा (पापकर्मासे बदलकर धर्मस्वरूप) बन जाता है और भगवत्प्राप्तिरूप परमा शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तुम यह सत्य समझो कि मुझको इस प्रकार भजनेवाले भक्तका कभी नाश (अध:पात) नहीं होता।'

इन दोनों प्रकारके पापियोंमें यही अन्तर है कि पहला पापको पाप न मानकर गौरव तथा अभिमानकी वस्तु मानता है, वह काम-क्रोध-लोभादिरूप आसुरभावको ही परम आश्रय समझकर उसीके परायण रहता है तथा नीच कर्मोंकी सिद्धिमें ही सफलताका अनुभव करता है और दूसरा पापी पापको पाप मानकर उनसे छूटना चाहता है और शरणागतवत्सल भगवान्‌को ही एकमात्र परम आश्रय मानकर परम श्रद्धाके साथ उनका भजन करना चाहता है। इसीसे यह भजन कर सकता है और शीघ्र ही पापमुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

पाप बननेमें प्रधान कारण है पापमें अज्ञानपूर्ण श्रद्धा या आस्था। मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति तथा कामना होती है और संग-दोषसे वह पापोंको ही उनकी प्राप्ति तथा संरक्षण-संवर्धनमें हेतु मान लेता है। फिर उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक पापोंमें ही लगा रहता है। संसारबन्धनसे छूटनेके लिये निष्कामभावसे तो वह भगवान्‌को भजनेकी कल्पना भी नहीं कर पाता, सकामभावसे भी भगवान्‌को नहीं भजता, उधर उसकी वृत्ति जाती ही नहीं और वह दिन-रात नये-नये पापोंमें उलझता हुआ सदा-सर्वदा अशान्तिका अनुभव करता है तथा परिणाममें घोर नरकोंकी यातना भोगनेको बाध्य होता है! भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।२०)

'अर्जुन! ऐसे मूढ (मनुष्य-जन्मके चरम और परम लक्ष्य) मुझ (भगवान्)-को न पाकर जन्म-जन्ममें—हजारों-लाखों बार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर उससे भी अधम गतिमें—नरकोंमें जाते हैं।'

भवाटवीमें भटकते हुए जीवको अकारणकरुण भगवान् कृपा करके मनुष्य-शरीर प्रदान करते हैं, यह देवदुर्लभ शरीर मिलता ही है केवल भगवत्प्राप्तिका सफल साधन करनेके लिये। इसीके लिये इस जीवनमें विशेषरूपसे 'बुद्धि' दी जाती है, पर मनुष्य परमात्माकी दुर्लभ देन—उसी बुद्धिको भोगासक्तिसे पापार्जनमें लगाकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनसे ही वंचित नहीं होता, वरं बहुत बड़े पापोंका बोझ लादकर दुर्गतिको प्राप्त होता है! यह मानवजीवनकी सबसे बड़ी और महान् दुर्भाग्यरूप विफलता है। इसीसे विषयानुरागी मनुष्यको भाग्यहीन बतलाया गया है—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × ×

ते नर नरकरूप जीवत जग
भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि-पाप असुचि-मन
खल मति-मलिन, निगम पथ-त्यागी॥

× × ×

तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि
सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन
जनमत जगत जननि दुख लागी॥

अतः मानव-जन्मकी सफलता इसीमें है कि मनुष्य अथक प्रयत्न करके भगवान्‌को या भगवत्प्रेमको प्राप्त कर ले। कम-से-कम भगवत्प्राप्तिके पवित्र मार्गपर तो आरूढ़ हो ही जाय। इसके लिये सत्संग करे और सत्संगमें भगवान्‌के स्वरूप, महत्त्व तथा उनकी प्राप्ति ही मानव-जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य है—यह जानकर उसीमें लग जाय। मनुष्यको यह बड़ा भारी मोह हो रहा है कि 'सांसारिक भोगोंमें सुख है।' यह मोह जबतक नहीं मिटता, तबतक वह अभी किसी देवताका आराधन भी करता है तो इसके फलस्वरूप वह सांसारिक विषय-भोग ही चाहता है। वह छूटना तो चाहता है दुःखसे और प्राप्त करना चाहता है सुखको, परंतु विषय-सुखकी भ्रान्तिवश मोहसे वह बार-बार प्राप्त करना चाहता है विषय-भोगोंको ही, जो दुःखके उत्पत्ति-स्थान हैं—दुःखके खेत हैं—'दुःखयोनय एव ते।'

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

सत्संगके बिना भगवत्कथा सुननेको नहीं मिलती। भगवत्कथाके बिना उपर्युक्त मोहका नाश नहीं होता और मोह मिटे बिना श्रीभगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेम नहीं होता।

यह प्रबल मोहकी ही महिमा है कि बार-बार दुःखका अनुभव करता हुआ भी मनुष्य उन्हीं दुःखदायी भोगोंको चाहता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यौं जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥

'जैसे युवती स्त्री संतान-प्रसवके समय दारुण दुःखका अनुभव करती है, परंतु वह मूर्खा सारी वेदनाको भूलकर पुनः उसी दुःखके स्थान पतिका सेवन करती है। जैसे लालची कुत्ता जहाँ जाता है, वहीं उसके सिरपर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच पुनः उसी रास्ते भटकता है, उस मूढको जरा भी लाज नहीं आती।'

बस, यही दशा मोहग्रस्त मानवकी है। बार-बार दुःखका अनुभव करनेपर भी वह उन्हीं विषयोंमें सुख खोजता है। इसी मोहके कारण वह भगवान्‌का भजन नहीं करता।

भगवत्कृपासे जब यथार्थ सत्संग-सूर्यका उदय होता है, तब मनुष्यकी मोह-निशा भंग होती है और वह विवेकके मंगल-प्रभातका दर्शन प्राप्त करता है। यथार्थ सत्संग वही है, जो इस मोहका नाश करनेमें समर्थ हो। जिस संगसे विषय-विमोह और विषयासक्ति बढ़ती है, वह तो कुसंग ही है। यह मोहकी ही महिमा है कि अपनेको साधु, जीवन्मुक्त, भक्त या महात्मा मानने तथा बतलानेवाले लोग भी विषयकामना करते और विषयोंका महत्त्व मानते हैं। सच्चे संत, महात्मा या भक्त तो वे ही हैं, जिनका विषय-विमोह या भोग-विभ्रम सर्वथा मिट गया है। जिनकी दृष्टिमें सांसारिक विषयोंका भगवान्‌के अतिरिक्त कोई अस्तित्व ही नहीं रहा है और रहा है तो विनोद या खेलके रूपमें ही। अथवा उन संत-साधकोंका सत्संग भी बड़ा लाभदायक है, जिनकी दृष्टिमें संसारके भोग विष या मलके सदृश घृणित और त्याज्य हो चुके हैं। जो मनुष्य विषय-भोगोंका बाहरसे त्याग करके यह मानता है कि 'मैंने बहुत बड़ा त्याग किया है, कैसे-कैसे महत्त्वपूर्ण विषयोंको छोड़कर—घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, धन-ऐश्वर्य, पद-अधिकारका परित्यागकर वैराग्यको ग्रहण किया है। वह बाहरसे भोगपदार्थोंका त्याग करनेवाला होनेपर भी वस्तुतः मनसे भोगोंका त्याग नहीं कर पाया है; क्योंकि उसके मनमें भोगोंकी स्मृति और उनकी महत्ता बनी हुई है, तभी तो वह अपनेको 'बड़ा त्यागी' मानता है। क्या जंगलमें या पाखानेमें मल त्यागकर आनेवाला मनुष्य कभी तनिक भी मनमें गौरव करता है कि मैंने बड़े महत्त्वकी वस्तुका त्याग किया है? क्या उसे उसमें जरा भी अभिमानका अनुभव होता है? वह तो एक सहज आरामका अनुभव करता है। इसी प्रकार विषयभोगोंमें मल-बुद्धि या विष-बुद्धि होनेपर उनके त्यागमें आराम तो मिलता है, पर किसी प्रकारका अभिमान नहीं हो सकता; क्योंकि उसका वह त्याग भगवान्‌में महत्त्व-बुद्धि और भोगोंमें वास्तविक त्याग-बुद्धि होनेपर भी होता है। ऐसे पुरुषोंका जीवनचरित्र ही भोग-लिप्साको दूर करनेवाला मूर्तिमान् सत्संग है। अथवा उनका सत्संग करना चाहिये, जो भगवत्प्रेमके नशेमें चूर होकर या तो संसारको सर्वथा भूल चुके हैं या जिनको नित्य-निरन्तर समग्र जगत्‌में केवल अपने प्रियतमकी मधुर मनोहर झाँकी हो रही है।'

सत्संगके द्वारा जितना ही मोहका परदा हटेगा या फटेगा, उतना ही विषय-व्यामोह मिटकर भगवान्‌का और चित्तका आकर्षण होगा और उतनी ही अधिक भगवद्भजनमें प्रवृत्ति होगी एवं ज्यों-ज्यों भजनमें निष्कामता, प्रेम और निरन्तरता आयेगी, त्यों-ही-त्यों मोह-निशाका अन्त समीप आता जायगा। फिर तो मोह मिटते ही भगवान् हृदयमें आ विराजेंगे। विराज तो अब भी रहे हैं, परंतु हमने अपनी अन्दरकी आँखोंपर परदा डाल रखा है और उनके स्थानपर मलिन कामको बैठा रखा है, इसीसे वे छिपे हुए हैं। फिर प्रकट हो जायँगे और उनके प्रकट होते ही काम-तम भाग जायगा—

जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

श्रद्धा संस्कृतिका कवच है

(श्रीरामनाथ 'सुमन')

गाड़ी तेजीसे पूर्वकी ओर दौड़ी जा रही थी। इटारसी आया, रामायणकालीन ऋषि जाबालिके नामावशेष-सा जबलपुर आया और अब सतना बीत रहा था। मेरी सीटके सामने तीन नवयुवक बैठे दुनियाकी विचारधाराओंका श्राद्ध कर रहे थे। ज्ञानके नामपर वे कोरे-से लगते थे; अध्ययन उनका चन्द समाजवादी लोकप्रिय किताबोंतक सीमित था। बातें वे मार्क्स और हेकेलकी जरूर कर रहे थे; परंतु मुझे सन्देह है कि उन्होंने इनकी कृतियोंका पारायण भी किया था—वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण तो दूरकी बात है।

तीसरे दर्जेकी यात्रा यों ही कुछ कम मनोरंजक नहीं होती। घटनाएँ लोक-जीवनतक आकर अफवाहोंमें किस तरह बदल जाती हैं, इसका अच्छा नमूना हमें वहाँ मिलता है। राजनीति, समाजनीति, अतीत और इतिहास—सब इस दरबारमें हाथ बाँधे उपस्थित होते हैं और उनका बहुरूपियापन देखकर आश्चर्य होता है।

हाँ, तो मैं कह यह रहा था कि ये तीनों युवक गाड़ीकी गतिसे भी अधिक तेजीके साथ दुनियाकी नवीनतम विचारधाराओंपर बात कर रहे थे और दुनियाके विवेकपर अपना फैसला भी देते जाते थे। उनका कहना था कि ईश्वरकी कल्पना (जरा इस शब्दपर ध्यान दीजिये—'अनुभूति' भी नहीं, केवल कल्पना) पहले तो असंस्कृत भयके कारण पैदा हुई और फिर लोगोंको पथभ्रष्ट और भुलाये रखनेके लिये उसपर तरह-तरहकी कलई की गयी। जिनका दिमाग उसी अनगढ़-'क्रूड'—अवस्थामें है, उनके लिये यह मुबारक हो; पर 'प्रगतिशील' मानसके लिये ईश्वर फालतू चीज है। जबतक मानव-हृदय इस जंजीरमें जकड़ा हुआ है, समाजका विकास नहीं हो सकता। पहले हमें इस मूर्खताको हटाकर मानव-जीवनको उन्मुक्त करना चाहिये, तभी समाजका ठीक तौरपर संघटन हो सकता है।

देशके नवशिक्षित लोगोंमें इस प्रकारके अधकचरे, अधपके और जहरीले विचार बड़ी तेजीसे फैल रहे हैं। जीवनमें संस्कारिताका कुछ ऐसा लोप हो रहा है कि हमारे बच्चे जिस वातावरणमें साँस लेते और पनपते हैं; जहाँसे वे अपना मानसिक खाद्य ग्रहण करते हैं, वह जहरसे भरा हुआ होता है। आजकी सभ्यताका यम-नियम और संयमसे कोई वास्ता नहीं रह गया है। हर एकको बोलनेका अधिकार प्राप्त है, चाहे उसका बोलना वाणीको लज्जित करता हो।

जीवनके प्रति ऐसी सस्ती, हल्की वृत्ति देखकर कभी-कभी बड़ी निराशा होती है। मस्तिष्क 'स्टीरियोटाइप' से हो रहे हैं। वे अपनी बात नहीं कहते—उनमें चन्द मामूली पुस्तकोंकी छायाभर प्रतिबिम्बित है। फिर भी गर्व यह है कि और लोग 'दकियानूस' हैं और हमारा स्वतन्त्र चिन्तन ही दुनियाका उद्धार करेगा।

जब इन लोगोंकी बातोंसे अपच होने लगी, तब मेरी दृष्टि उसी डिब्बेमें बगलकी बेंचपर बैठे तीन प्राणियोंकी ओर गयी। स्त्री-पुरुष और बालक। ये बेचारे दादर (बम्बईके एक उपनगर)-में गाड़ीपर बैठे थे। जौनपुर जिलेके रहनेवाले थे। लगभग पन्द्रह वर्षसे बम्बईमें रह रहे थे—जीविकाका सवाल उन्हें वहाँ लाया था। जाड़ेके दिन। कपड़े बहुत कम थे। बम्बईके उपयुक्त रहे होंगे, पर भुसावलसे इधर तो ठण्ड बढ़ती ही जाती थी। हम अपने गरम कपड़ोंमें भी संकुचित होते जा रहे थे, पर वे किसी भावी पुण्यकी आशासे पुलकित थे। सर्दीकी तरफ उनका ध्यान न था। मालूम हुआ, तीन दिनकी छुट्टी लेकर तीर्थराज प्रयाग जा रहे हैं। गंगामें डुबकी लगायेंगे और बिछुड़ी माताकी गोदके स्नेहका अनुभव करेंगे। दिनको १० बजे पहुँचेंगे और शामकी गाड़ीसे फिर लौट जायँगे। सालमें पेट काटकर कुछ रुपये जमा किये हैं। उनका इससे उत्तम उपयोग क्या होगा कि चन्द घण्टे पुण्य-तीर्थमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त करें।

पहले जब इन्होंने कहा था कि इलाहाबाद आ रहे हैं, तब मैंने सोचा था कि वहाँ इनका घर होगा। अपने 'देश' जा रहे होंगे। पर जब पीछे असली बातका पता लगा तो आश्चर्यसे मैं अभिभूत हो गया। थोड़ी देरमें इस आश्चर्यने श्रद्धाका रूप ग्रहण किया। मैंने मन-ही-मन ईश्वरका धन्यवाद किया कि अभी हमारे देशमें हमारी सभ्यताके कुछ सच्चे प्रतिनिधि बच रहे हैं, जो दुनियाकी

विचारधाराओंपर बहस नहीं कर सकते, पर जिनकी मौन श्रद्धा और अटल विश्वासके आगे आधुनिकताका दावा करनेवालोंके अधूरे तर्क निःसार और निष्फल हैं।

अभी दिल्लीसे लखनऊ जाते हुए मैंने इसी प्रकारकी श्रद्धाके कई दृश्य देखे हैं और वह पुरानी याद ताजा हो गयी है। जब-जब नगरोंसे दूर ग्रामीण प्रदेशोंमें जाने या उधरसे गुजरनेका मौका मिलता है, तब-तब मुझे एक अनोखा अनुभव होता है। जैसे चारों ओरसे बन्द कमरेके अन्दर जब बाहरसे आ रहा आदमी प्रवेश करता है, तभी उसे पता चलता है कि शुद्ध मुक्त वायु और बन्द जहरीली हवामें क्या अन्तर है; अन्दर बैठे आदमीको, उस विषाक्त हवामें साँस लेते रहनेका अभ्यास हो जानेके कारण कोई असुविधा नहीं अनुभव होती; पर मृत्युका विष प्रतिक्षण धीरे-धीरे उसके अन्दर प्रविष्ट होता रहता है। वैसे ही हम औद्योगिक नगरोंमें रहनेवाले लोग जब बाहर निकलते हैं, तभी पता लगता है कि भारतवर्ष क्या है और उसका हृदय कहाँ है। हमारे नगरोंपर वैदेशिकताकी छाप है—नागरिकोंके मस्तिष्क, जिन्हें शिक्षित होनेका गर्व होता है, प्राय: विदेशी विचारकों या प्रचारकोंके यहाँ बन्धक होते हैं; उनमें स्वार्थपरायणता होती है तथा जीवनका आर्थिक पहलू वहाँ प्रधान होता है। ये नागरिक अपनेको माप बनाकर भारतका हृदय मापते हैं—अपनी शिक्षाके दृष्टिकोणसे सम्पूर्ण जातीय मानसका विश्लेषण करते हैं और ग्रामीणोंको सुधारनेका दम भरते हैं। इससे अधिक आत्मवंचना और क्या होगी? जहाँसे हमें सीखना है, वहाँ हम सिखाने जाते हैं।

यह जो भारतीय संस्कृति शताब्दियोंकी दुर्लङ्घ्य खाइयों और धाराओंको पारकर आज भी जीवित है—जिसके आगे राजवंशोंके दीपक बुझते गये हैं, क्रान्तियोंकी विद्युत्-रेखाओंका अभिनय होता रहा है और विप्लव तथा विद्रोहका ताण्डव-नृत्य भी हुआ है, किंतु इन सब अभिनयोंके पश्चात् भी जो एक सन्देशको लिये जी रही है, उसे जिला रखनेका श्रेय इन्हीं श्रद्धावान् ग्रामीणोंको है। संतोंने इनके हृदयको उठाया है और धर्मके मौलिक सिद्धान्तोंकी इनके जीवनमें व्याख्या हुई है।

यह श्रद्धा जबतक जीवित है, संस्कृतिका विनाश कैसे हो सकता है? यह श्रद्धा ही संस्कृतिका कवच है।

आवरणचित्र-परिचय

[देवर्षि नारद]

देवर्षि नारद भगवान् विष्णुके मानस अवतार और ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। ये परब्रह्म परमात्माके मन हैं। ये परम भागवत और भक्तिके आचार्य हैं। अप्रतिहत गतिवाले नित्य परिव्राजक नारदजी समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये सम्पूर्ण लोकोंमें पर्यटन किया करते हैं। 'नार' शब्द जलका पर्याय है, ये सर्वदा जलसे तर्पण करते हैं, इसलिये इनका नारद नाम पड़ा।

देवर्षि नारदजी वेदान्त, योग, ज्योतिष, वैद्यक, संगीतशास्त्रादि अनेक विद्याओंके आचार्य हैं और संकीर्तन-भक्तिके तो वे मुख्याचार्य ही हैं। स्वरग्रामसे विभूषित अपनी वीणापर भगवन्नाम और भगवद्गुणोंका गान करते हुए वे त्रिलोकीमें भ्रमण करते रहते हैं। उनका एक ही व्रत है, जो मिल जाय उसे भगवान्के चरणकमलोंमें पहुँचा देना। ऐसे कृपामूर्ति देवर्षि नारदजीके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

अहा! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्को भी आनन्दित करते रहते हैं।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रश्न—प्रेम कैसे बना रहे?

उत्तर—प्रेमकी महिमा सबसे अधिक है। प्रेमकी जितनी महिमा है, उतनी महिमा ज्ञानकी भी नहीं है और भगवान्‌के साक्षात् दर्शनकी भी नहीं है! यदि आपसमें निष्काम प्रेम हो जाय तो वह प्रेम भगवत्प्राप्तिमें कारण हो जाता है!

आपसमें जो वैर-विरोध होता है, वह प्रारब्धसे नहीं होता, प्रत्युत अपनी गलतीसे होता है। अपनी गलतीको मिटानेमें हम स्वतन्त्र हैं। अपनी गलती मिटा दें, अपना अभिमान छोड़ दें तो प्रेम हो जायगा। वैर रखनेसे बहुत नुकसान होता है। जिस घरमें लड़ाई होती है, उस घरकी कन्या कोई लेना नहीं चाहता कि हमारे घरमें चिनगारी आ जायगी तो आग लग जायगी! आपसमें खटपट होनेसे कुएँका पानीतक सूख जाता है! आपसमें प्रेम होनेसे धन-सम्पत्ति भी बढ़ जाती है—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(रा०च०मा० ५।४०।६)

जिस घरमें प्रेम होता है, उस घरकी रोटी साधु भी लेना चाहते हैं, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो। आपसमें स्नेह होता है—नम्रतासे, सरलतासे, सीधेपनसे, द्वेष न रखनेसे, ईर्ष्या न रखनेसे।

अपने-अपने घरोंमें, गाँवोंमें एक-दूसरेकी सेवा करो, सुख पहुँचाओ। दूसरोंको सुख पहुँचानेकी अपनी आदत बना लो। जो गरीब घर हैं, जहाँ अन्न-वस्त्रकी तंगी है, उन घरोंमें छिपकर अन्न-वस्त्र पहुँचाओ, गरीब बालकोंको पढ़ाओ, उनकी सहायता करो तो आपका पैसा सफल हो जायगा। इसका बड़ा भारी पुण्य होगा। यह निश्चित बात है कि जिस दिन मरोगे, पैसा छोड़कर ही मरोगे। आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ कि पैसा सब खर्च हो गया, पीछे आदमी मरा। विरक्त, त्यागी सन्त-महात्माकी भी तूँबी, लँगोटी पीछे रहती है, मरता है पहले!

× × ×

सजातीयतामें खिंचाव होता है। अतः जिनके भीतर कुसंगके संस्कार हैं, उनपर कुसंगका असर ज्यादा पड़ता है। जिनके भीतर सत्संगके संस्कार हैं, उनपर सत्संगका असर ज्यादा पड़ता है। इसलिये सत्संगके द्वारा अपने भीतर अच्छे संस्कार भरने चाहिये।

जिसका भगवान्‌में प्रेम है, उसका माता-पिता आदिमें, पशु-पक्षियोंमें, सब प्राणियोंमें प्रेम होगा ही।

× × ×

प्रश्न—बाहरकी पवित्रतासे क्या लाभ? मन पवित्र होना चाहिये। मन पवित्र है तो बाहरकी पवित्रताकी क्या जरूरत?

उत्तर—मन अपवित्र, खराब होता है, तभी यह बात पैदा होती है कि बाहरकी पवित्रतासे क्या लाभ? अगर मन पवित्र हो तो शास्त्रसे विरुद्ध काम हो ही नहीं सकता, असम्भव बात है। अगर शास्त्रसे विरुद्ध बात पैदा होती है तो यह मनकी अपवित्रताका प्रमाण है। मन पवित्र होगा तो शास्त्र-विरुद्ध बात पैदा हो ही नहीं सकती, प्रत्युत बिना शास्त्र पढ़े मनमें शास्त्रके अनुकूल बात पैदा होगी। राजा दुष्यन्तने जब कण्व ऋषिके आश्रममें शकुन्तलाको देखा तो उनके मनमें विचार आया कि यह किसी क्षत्रियकी बेटी है, ब्राह्मणकी बेटी नहीं है। अगर यह ब्राह्मणकी बेटी होती तो मेरा मन उसमें खिंचता ही नहीं—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तल १।२१)

'इसमें सन्देह नहीं कि यह क्षत्रियद्वारा ग्रहण करनेयोग्य है, जिससे मेरा विशुद्ध मन भी इसको चाहता है; क्योंकि जहाँ सन्देह हो, वहाँ सत्पुरुषोंके अन्तःकरणकी प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है।'

सीताजीको देखनेपर रामजी भी कहते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(रा०च०मा० १।२३१।५-६)

× × ×

प्रश्न—हम धर्मको मानते हैं, सुबह-शाम पूजा भी

करते हैं, फिर एक चोटी न रखें तो क्या हानि है?

उत्तर—घड़ीमें अनेक पुर्जे होते हैं। उनमेंसे एक छोटा-सा पुर्जा भी निकाल दो तो घड़ी चलेगी नहीं। आप कोई भी काम करो, उसमें छोटी-सी भी कमी रह जायगी तो वह कमी ही रहेगी, इसमें सन्देह नहीं है। घड़ीमें छोटे-से-छोटा पुर्जा भी अपनी जगह पूरा है। उसकी कीमत बड़े पुर्जेसे कम नहीं है। इसी तरह चोटी भी अपनी जगह पूरी है। अपनी-अपनी जगह सब पूरे हैं। क्या घड़ीके छोटे पुर्जेकी जगह बड़ा पुर्जा काम कर सकता है?

छोटी-सी कमी भी कमी ही रहेगी, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। महाराज नलके शरीरमें प्रवेश करनेके लिये कलियुग कई दिनोंतक प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन लघुशंका करके नलने हाथ तो धो लिये, पर पैर नहीं धोये तो कलियुग उनमें प्रवेश कर गया! छोटी-सी कमी भी बड़ी भारी कमी है। अतः चोटी न रखना बड़ी भारी कमी है!

अगर सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहते हो तो अपनी बुद्धिमानी मत लगाओ, शास्त्रकी बात मानो। गीता कह रही है—**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'** (१६। २४) अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें शास्त्र ही प्रमाण है।

× × ×

प्रश्न—एक भाई कैन्सर-रोगके कारण बड़ा कष्ट पा रहा है। ऐसी अवस्थामें उसका कल्याण हो, इसके लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर—वह सब घरवालोंका हृदयसे त्याग करके, साधु-संन्यासीकी तरह होकर एक भगवान्‌के शरण हो जाय। 'मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् मेरे हैं; मैं और किसीका नहीं हूँ और मेरा कोई नहीं है'—इस भावसे रात-दिन भगवान्‌के भजनमें लग जाय तो कल्याण हो जायगा। भगवान्‌के चरणोंके शरण होनेसे सब काम ठीक हो जाता है।

मृत्युसे डरे नहीं, प्रत्युत मृत्युको साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझे कि मृत्युरूपसे साक्षात् स्वयं भगवान् आयेंगे। **'वासुदेवः सर्वम्'**—सब कुछ भगवान् ही हैं तो क्या मृत्यु भगवान् नहीं हैं? भगवान्‌के भक्त मौतको भी भगवान्‌का स्वरूप समझते हैं। सब कुछ भगवान् ही हैं, केवल राग-द्वेषके कारण ही संसार दीख रहा है।

प्रश्न—मूक सत्संग क्या है?

उत्तर—न शरीरकी क्रिया हो, न वाणीकी क्रिया हो, न मनकी क्रिया हो, सब मूक (चुप) हो जायँ। कोई भी क्रिया न करके एक भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाय। शरण होना है—यह भाव भी न रहे। यह 'चुप साधन' है।

× × ×

जैसे आपकी कन्याका विवाह हो जाता है तो वह ससुरालकी हो जाती है, उसका गोत्र बदल जाता है, ऐसे ही जो सर्वथा भगवान्‌के शरण हो जाता है, उसका सब कुछ बदल जाता है। वह संसारी आदमी नहीं रहता। वह संसारसे ऊँचा उठ जाता है। उसकी वाणी विलक्षण हो जाती है। उसका जीवन विलक्षण हो जाता है। एक भगवान्‌के शरण होते ही उसका और भगवान्‌का एक रूप हो जाता है। इसलिये 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इस प्रकार शरण होकर निश्चिन्त हो जाय। इसमें किसी गवाहकी जरूरत नहीं है। 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इतना कह देनेमात्रका बड़ा माहात्म्य है, अगर भीतरसे हो जाय तो पूर्ण हो जायगा!

'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह प्रार्थना हरेक भाई-बहनके लिये बड़े कामकी है। आप हरदम यह प्रार्थना करके देखो तो सही, विचित्रता आ जायगी! बीचमें अपनी बुद्धि मत लगाओ। भगवान्‌को भूलें नहीं, फिर सब काम ठीक हो जायगा। स्वयं पहलेसे ही परमात्माका अंश है और वह उसीके शरण हो जाय तो फिर बाकी क्या रहेगा?

× × ×

प्रत्येक काममें दो बातें खास हैं—अपने स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित। कोई भी काम इस भावसे मत करो कि इससे मेरेको क्या फायदा होगा, प्रत्युत इस भावसे करो कि इससे दूसरेको क्या फायदा होगा। जो अपना मतलब सिद्ध करनेमें लगे हैं, वे अपना कल्याण नहीं कर सकते।

अभिशाप नहीं है प्रतिकूलता

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

दुःख-सुख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, सुविधा-संघर्षका नाम ही जीवन है। दुःख और सुख सामान्यतः पाप और पुण्यके परिणाम माने जाते हैं। शास्त्र कहते हैं कि जब मनुष्यके अनन्तानन्त जन्मोंके पुण्यसमूहोंका उदय होता है तो उसके पास अनेक प्रकारके साधन तथा सुविधाओंका अम्बार लग जाता है। सभी अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय परिजन-जैसे लगने लगते हैं। सुखोंके अनेक साधन स्वतः ही जुटने लग जाते हैं। इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली सामग्रियाँ, देहको सुख प्रदान करनेवाली वस्तुएँ, मनको लुभानेवाले संसाधन, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा आदि सभी मनुष्यकी झोलीमें अनायास गिरने लगता है। संसार बड़ा ही मनोरम और सुखदायी लगने लगता है। इसकी सतरंगी आभा जीवनको सुवाससे भर देती है। ऐसेमें संसारको दुःखालय कहनेवाले लोगोंकी बातें बड़ी विचित्र, अप्रिय एवं अनुचित लगने लगती हैं।

जब सुख आता है तो जीवनमें भोग-विलास भी बढ़ जाता है। भोगविलासी मनुष्य तन-मनसे भोग एवं वासनाओंमें निरत तथा मस्त हो जाता है। राजासे संन्यासी बने भर्तृहरि महाराज तो यहाँतक कहते हैं कि तब जीवन भोगके योग्य ही नहीं रह जाता, अपितु भोग ही जीवनको भोग-भोगकर खोखला कर देता है और अन्तमें उसे विनाशके दावानलमें झोंक देता है। भोगी व्यक्तिको यह ध्यान ही नहीं रहता कि वह अपने सुखोंको होशमें भोग रहा है अथवा बेहोशीमें। सन्त-मनीषी कहते हैं—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् भोग भी त्यागके साथ, सुख भी होशके साथ भोगा जाय तो वह योग बन जाता है।

बेहोश एवं बदहवास मनुष्य दुःखको अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता है; क्योंकि वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उससे जूझनेके बदले आँसू गिराता है। तब दुःख जीवनको ऐसे झकझोर देता है, जिससे सोया हुआ इनसान जाग जाता है। पुरुषार्थीके लिये प्रतिकूलता, विषमता एवं कठिनाइयाँ वरदानस्वरूप सिद्ध होती हैं। भगवान् रामका चौदह वर्षका वनवास कोई अभिशाप नहीं था। उन्होंने कठिनाइयोंसे भरे वर्षोंमें वह सब कुछ सीखा, समझा और पाया, जिसे वे सामान्यकालमें शायद ही पा सकते। रामने माता सीताका हरण होनेके बावजूद असीम धैर्य और सहनशीलतासे विपरीत परिस्थितियोंका सामना किया। यही विषमता उनकी प्रेरणास्रोत बनी और उन्होंने रीछ-वानरों-जैसे दुर्बल और कमजोर समझे जानेवाले प्राणियोंको इकट्ठा करके महाबली और साधन-सम्पन्न



योद्धा रावणसे युद्ध किया और विजयश्री प्राप्त की।

यदि हम महाभारतपर दृष्टि डालें तो हमें अर्जुन और दुर्योधनके जीवनमें भी इतिहास अपने आपको दोहराता हुआ दृष्टिगोचर होता है। भोग-विलासमें पूरी तरहसे चूर दुर्योधनने केवल पुण्यका फल भोगा, परंतु बारह वर्षके वनवास और एक वर्षके कठोर अज्ञातवासकी अवधिमें अर्जुन विषमताओंसे लड़ा-जूझा और पाशुपतास्त्रसहित अनेकानेक दिव्यास्त्रोंको प्राप्त करनेमें सफल हुआ। यदि अर्जुनके समक्ष प्रतिपल प्रतिकूलताओं और कठिनाइयोंकी भयावहता नहीं होती तो वह भी इन

दिव्य अनुदानों-वरदानोंसे वंचित ही रहता। प्रतिकूलता अर्जुनकी चुनौती बनी। उसने इस चुनौतीको स्वीकार किया एवं अदम्य संयम तथा साहसके साथ सामना करते हुए विजयश्रीका वरण किया।

अब्राहम लिंकन बड़े अभावों और कठिनाइयोंके बीच पलकर बड़े हुए थे। कहते हैं कि स्ट्रीट लाइटके नीचे बैठकर उन्होंने पढ़ाई पूरी की थी। लेकिन अपने अथक परिश्रम, प्रबल इच्छाशक्ति और अदम्य साहसके बलपर वे अमेरिकाके राष्ट्रपतिपदतक पहुँच गये थे। सूरदास जन्मसे अन्धे और निर्धन परिवारसे सम्बन्ध रखते थे। भूखसे लड़ते हुए वे श्रीकृष्णकी भक्तिके रसमें ऐसे डूबे कि भगवान् प्रकट हो गये। उनकी काव्य-रचना अद्भुत है। आज भी उनके भजनोंको गुनगुनाकर भक्तजन झूम उठते हैं। स्वामी शरणानन्दजी भी अन्धे थे और निर्धन भी, परंतु उन्होंने अपने पुरुषार्थके द्वारा ज्ञानका ऐसा आलोक फैलाया कि उनकी गिनती आज महाज्ञानियों और भक्त-शिरोमणियोंमें की जाती है। आध्यात्मिक क्षेत्रमें परचम लहरानेवाले अधिकांश सन्तोंका जीवन कठिनाइयों और अभावोंमें ही बीता था।

नियमित अभ्यास, अथक परिश्रम, चुनौतीको स्वीकार करनेकी प्रबल इच्छाशक्ति एवं भगवत्कृपाका आश्रय लेकर व्यक्ति एकके बाद एक सफलता अर्जितकर अपने लक्ष्यतक पहुँचनेमें सफल हो जाता है। आदमी जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है। इसलिये वैसा सोचो जैसा बनना है। हर काली रातके बाद सुहानी सुबह आती है, अतः सदैव उजालेकी ओर देखो। यदि विचार ऊँचा हो और संकल्पशक्ति दृढ़ हो तो सफलता हमारे पीछे दौड़ी चली आयेगी।

भारतीय संस्कृतिको विश्व-संस्कृतिके रूपमें प्रतिष्ठित करनेवाले युगनायक स्वामी विवेकानन्दके बचपनको छोड़ दिया जाय तो उनका समूचा जीवन भीषण विषमताके दावानलमें गुजरा। पिताजीके देहावसानके बाद युवा नरेन्द्रके सामने पूरे परिवारके भरण-पोषणकी जिम्मेदारी आ खड़ी हुई। तमाम विसंगतियोंका वरण करते हुए साधनहीन होनेके बावजूद स्वामी विवेकानन्दने पूरे विश्वको झकझोर कर रख दिया और वह सब कुछ कर दिखाया, जिसे करनेके लिये समूची धरतीके साधन भी कम पड़ते थे।

साधन एवं सुविधाओंसे कोसों दूर क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह और सुभाषचन्द्र बोसने युद्ध-तकनीकोंकी विशेषज्ञ एवं साधन-सम्पन्न अँगरेजी सरकारको ऐसी पटखनी दी, जिसे वे कभी भूल नहीं सकते। वस्तुतः प्रतिकूलता, विषमता एवं चुनौतियाँ हमें सशक्त बनाती हैं, परंतु हम इन्हें किस रूपमें लेते हैं, यही महत्त्वपूर्ण है। यदि कठिन घड़ीमें हम रोते-बिलखते रहें तो जीवन अभिशप्त लगने लगेगा और इससे पलायन करनेका मन करेगा, भले ही इससे भागना सम्भव हो अथवा नहीं। इसके विपरीत यदि प्रतिकूलताको हम एक चुनौती की तरह स्वीकार कर लें तो हमारे भीतर निश्चित ही संघर्षसे जूझनेकी इच्छाशक्ति पैदा होगी, हमारा आत्मविश्वास बढ़ेगा और जीवनके हर पलको हम खेलकी तरह समझने लगेंगे। तब कठिनाइयाँ हमारा सम्बल बनेंगी और चुनौती सफलताका सबसे बड़ा आधार और अवसर सिद्ध होगी।

महापुरुषोंका कथन है कि प्रतिकूलताएँ अभिशाप नहीं, अपितु वरदान होती हैं। कठिनाइयाँ हमें समर्थ बनाती हैं और चुनौतियाँ लक्ष्यके प्रति सजग और सचेष्ट करती हैं। विषमता एवं प्रतिकूलतामें तन और मनकी सारी ऊर्जा एकत्रित होकर उससे निकलनेके लिये तत्पर हो उठती हैं। प्रतिकूलता अभिशाप तो उनके लिये होती है, जो दुःखमें दुःखके कारणोंको दूसरोंमें आरोपित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो मनुष्य दुःखमें भगवान्‌के अधिक समीप होता है। सुखमें तो वह भगवान्‌को भूल ही जाता है। जीवनभर दुःख भोगनेके बाद भी कुन्तीने श्रीकृष्णसे दुःख ही माँगा था; क्योंकि वह जानती थी कि जब-जब भी उसपर विपत्तिका पहाड़ गिरा, तब-तब उसने श्रीकृष्णको अपने पास खड़ा देखा और दुःखोंसे मुक्ति पायी। इसलिये महापुरुषोंने कहा भी है—

सुख के माथे सिल परे, जो नाम हृदय से जाए।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम रटाए॥

बोधकथा—

कोखकी कीमत

(श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)

आषाढ़ अमावस्याकी बरसाती बयार जब भयावही निशामें जगत्-शिशुको सुला देती है तब तमसाच्छन्न नीरव गगनके नीचे तटिनीके तटपर भारतकी नारियाँ अपने श्रद्धा-दीपकोंको आँचलमें छिपाये पहुँचती हैं और एक-एक दीपको धीमी लहरोंपर धीरे-धीरे प्रवाहितकर वर माँगती हैं कि हे अदृश्य देव! मेरी कोखसे ऐसे नक्षत्रको जन्म देना, जो हर नर-नारीका हृदयहार बन सके। शारदाकी भी चिरसंचित कामना तब फलित हुई, जब उसने ४५ वर्षकी आयुमें एक पुत्ररत्नको जन्म दिया। इसका नाम देवदत्त रखा गया।

देवदत्त अपने पिता सोमदत्तकी अकेली संतान है। उसके पैदा होनेसे पहले ही पिताकी सड़क-दुर्घटनामें मौत हो गयी थी। वे बड़े धार्मिक और दयालु प्रवृत्तिके व्यक्ति थे। सेवा-भावना उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह अपनी खेतीकी कमाईका अधिक हिस्सा असहाय और गरीब लोगोंको दान-दक्षिणामें ही खर्च कर देता था। पूरा गाँव उनके सेवा कार्योंको आज भी याद करके कहते हैं 'ऐसा नेक इंसान अब कभी नहीं आयेगा, वह इंसान नहीं देवता ही था।'

देवदत्तकी माँ शारदाकी तो दुनियाँ ही उजड़ गयी फिर भी देवदत्तका यथोचित लालन-पालनकर उसके भविष्यको उज्ज्वल बनानेकी साधके संकल्पके साथ जीवन जी रही थी वह। बालकके भावी जीवनकी मधुर कल्पना लिये कभी-कभी भाव-विभोर हो जाती।

आज देवदत्तका प्रथम जन्मोत्सव था। घरमें उत्सवका आलम था। पूरा घर-आँगन किलकारियोंसे गूँज रहा था। शारदाका मन-मयूर नाचने लगा। पास-पड़ोस, गली-मोहल्लेसे बधाइयाँ आने लगीं। सभीने भगवान्‌का अनुग्रह स्वीकारकर देवदत्तके लिये सुखी, सम्पन्न और सेवाभावी बननेके लिये मंगलकामनाएँ प्रकट कीं।

शारदाकी छायातले देवदत्तका प्यार-दुलारके साथ पालन-पोषण हो रहा था। देवी-देवताओंसे मनौतियाँ माँगी जा रही थीं। देवदत्त बचपनसे ही प्रतिभाशाली लगने लगा। *'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'* बच्चा बड़ा हुआ। उसे पढ़ाया-लिखाया, माँ शारदाकी डॉक्टर बनानेकी बलवती इच्छा थी, वह भी पूरी हो गयी। अपनी डॉक्टरीकी पढ़ाई कर ही रहा था कि उसकी प्रतिभासे प्रभावित होकर लोगोंका देश-विदेशसे बुलावा आना प्रारम्भ हो गया। वह पढ़ाई पूरीकर घर लौटा ही था कि अमेरिकासे भारतीय मूलके एक ख्यातिप्राप्त डॉक्टरका आमन्त्रण मिला। अच्छी खासी पगार, रहने-खानेकी सारी सुविधाएँ और आने-जानेका पूरा प्रबन्ध। समस्त आधुनिक सुविधाओंकी प्राप्तिसे आकर्षित हो देवदत्तने अमेरिका जानेका निश्चय कर लिया। निश्चित अवधिमें वहाँ पहुँचकर पूर्ण समर्पणभावसे कार्यारम्भ कर दिया। वहाँ जाने-माने डॉक्टरोंके साथ कार्य करनेका अवसर पाकर वह अपने व्यवसायमें दिन दूनी-रात चौगुनी प्रगति करने लगा और एक दिन वह अमेरिकाका ख्यातिप्राप्त डॉक्टर बन गया।

देवदत्तकी बढ़ती लोकप्रियतासे प्रभावित होकर उसी डॉक्टरने अपनी बेटी रंजनाकी शादी देवदत्तके साथ कर दी। शादीमें उसे अपार धनराशि तथा समस्त आधुनिक सुख-सामग्री भी प्राप्त हुई। अभी पाँच वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे कि देवदत्तकी अपनी ही धरतीपर कार्य करनेकी इच्छा शक्तिने उसे अपने देश भारतमें रहकर भारतीयोंकी सेवामें कार्य करनेको प्रेरित किया और वह वहाँसे अहमदाबाद आ गया। उसने अहमदाबादमें ही अपना निजी चिकित्सालय खोल दिया और समीप ही एक बँगला बनवाकर रंजनाके साथ रहने लगा। चिकित्साकार्य शुरू किया। हाथमें यश तो था ही। उसे असाध्यसे असाध्य रोगोंके उपचारमें सहज सफलता मिलती रही, अस्पतालकी ख्याति आसमानको छूने लगी। रात-दिन चिकित्सकीय कार्यमें उलझा रहता। बड़ा ही व्यस्त जीवन बन गया उसका।

रंजनाका व्यवहार बहुत ही रूखा था। वह चिड़चिड़े स्वभावकी थी। अपने भी उसे पराये लगते थे। देवदत्त उससे बड़ा दुखी था। रंजना पूर्णतः पाश्चात्य संस्कारोंसे पोषित थी, भारतीय संस्कारोंसे तो उसका दूरका रिश्ता भी नहीं था। पूरा समय क्लबों, पार्टियों, नाच-गानों और सैर-सपाटोंमें ही बीतता था। देर रातमें लौटना उसका स्वभाव-सा बन गया। परिजनोंसे तो पूरी पहचान भी नहीं हो पायी। उसके लिये अपने भी पराये ही थे। आये दिन लड़ाई-झगड़ोंसे देवदत्त खिन्न रहने लगा; रंजनाका सासू माँसे तो कोई लगाव था ही नहीं।

माँ शारदाको जब देवदत्तके अहमदाबादमें कार्य प्रारम्भ करनेकी जानकारी मिली तो उसे आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई। देवदत्त भी पाश्चात्य प्रभावसे मुक्त नहीं रह सका। शारदा सोचती थी कभी बहू घर आयेगी तो मेरे बुढ़ापेका सहारा बनेगी। दुःख-दर्दमें सेवा करेगी। वह कभी-कभी सोचती यदि ऐसा नहीं हुआ तो ···· कभी वह विचलित होकर अज्ञात भयसे भी दुखी हो जाती थी। आज देवदत्त अकेला ही माँसे मिलने घर आया और एक घण्टा भी नहीं ठहरा होगा, अहमदाबाद लौट गया। जब बहूको साथ नहीं लानेकी बात हुई तो सुनकर शारदा स्तब्ध रह गयी। वह गाँवोंकी जिन्दगी जीना किसी भी हालतमें पसन्द नहीं करती। वह यहाँ कभी नहीं आयेगी। माँ! उसका रहन-सहन चाल-ढाल हम लोगोंके अनुकूल भी नहीं है।

समयका पहिया घूमता रहा। दिन, महीने, साल बीत गये। शारदा बूढ़ी हो गयी, कमर झुक गयी, लाठी उसका सहारा बन गयी। कई बीमारियोंने एक साथ उसपर आक्रमण कर दिया। घरमें कोई दूसरा था नहीं। अकेली खटियापर पड़े-पड़े अपने पिछले दिनोंकी यादमें खो जाती। गम्भीर और असाध्य बीमारी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। खेती-बाड़ी दूसरोंके भरोसेपर होती थी। अच्छी कमाई थी खेतीसे, उस कमाईका थोड़ा हिस्सा दान-दक्षिणामें चला जाता था तथा कुछ जरूरत-मन्दोंको उधार दे देती। उसकी इच्छा थी कि कहीं ऐसी धर्मशाला बनायी जाय, जहाँ गरीब रोगियोंको आवासकी निःशुल्क सुविधा मिल सके। वह दिनोंदिन कमजोर होती जा रही थी। लोगोंने कहा अपने डॉक्टर बेटेके पास क्यों नहीं चली जाती? वह जाना-माना ख्यातिप्राप्त डॉक्टर है, उसके द्वारा लम्बी और असाध्य बीमारीसे ग्रसित रोगी भी चुटकियोंमें ठीक हो जाते हैं। आखिर वह तुम्हारा बेटा ही तो है। वहाँ खाने-पीने, रहने-ठहरने, दवा-दारू—सारी सुविधाएँ तुम्हें मिलेंगी। यहाँ सड़ते रहनेसे तो वहाँ जाकर इलाज कराना ज्यादा अच्छा है।

शारदाने अपने बेटेके पास अहमदाबाद जानेका मन बना लिया। वहाँ चली भी गयी। उसे अपने बँगलेके बाहरी दालानमें बनी एक छोटी-सी कोठरीमें ठहरा दिया। इस बातपर तो पति-पत्नीमें झगड़ा हुआ और लम्बे समयतक बोल-चाल भी बन्द रही तथा अनबन बढ़ती गयी। देवदत्त माँको भीतरके कमरोंमें रखना चाहता था, पर जिद्दी रंजनाके सामने देवदत्तकी एक न चली। रंजनाके रूखे व्यवहारके कारण ही देवदत्तने माँकी सेवामें एक दक्ष नर्सको सेवाकार्यके लिये नियुक्त कर दिया था। उपचार प्रारम्भ हो गया, दवा कामयाब रही और चार महीने वहाँ ठहर रोगमुक्त होकर वह गाँव लौट आयी। उसकी सेवामें कार्यरत नर्स आज भी उससे मिलने आती है तो उसका मन बाग-बाग हो जाता है।

आज मकर-संक्रान्तिका दिन था, ब्राह्मणोंका निमन्त्रण था, चौराहोंपर गायोंको घास डाला गया था। भीख माँगनेवालोंकी संख्या भी कम नहीं थी। सभीको शारदाने मुक्त हस्तसे दान-दक्षिणा दी। शामके लगभग ५ बजे होंगे, डाकिया आता दिखायी दिया। वह पहले कभी नहीं आया था। उसे देख, शारदाका मन-मयूर नाच उठा। आज मेरे बेटेकी चिट्ठी आयी होगी। बन्द लिफाफा देकर डाकिया चला गया। बड़ी उत्सुकतासे शारदाने लिफाफा खोला। तो उसमें बहू रंजनाका पत्र था, जिसमें लिखा था—

आदरणीया माताजी,

सादर प्रणाम। आपके चले जानेके बाद घर सूना-

सा हो गया। आपके रहते थोड़ी चहल-पहल तो थी। बातचीतसे मन लगा रहता था। अब तो यहाँ कोई बतियानेवाला भी नहीं है।

आपको एक बात कहना चाहती हूँ। आप बुरा मत मानना। जिस कमरेमें आप ठहरी थी, उसे अब ढाई हजार रुपये प्रति माहसे किरायेपर दे दिया है। आप जानती हैं कि शहरी जीवन जीनेमें खर्च तो अधिक होता ही है। जिस कमरेमें आप चार महीना ठहरी थीं, यदि वह खाली होता तो दस हजार रुपया मिल जाता। उससे साग-सब्जी, दूध-घी, बिजली-पानीका खर्च ही निकलता। आपके उपचारमें तो जो दवाइयाँ काममें आती थीं। वे तो डॉक्टर साहबको सेम्पलमें ही प्राप्त हुई थीं। दवाइयाँ बराबर लेते रहना अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रखना।

—आपकी बहू रंजना

पत्र पढ़कर शारदाको तो काटो तो खून नहीं। उसे उन दिनोंकी यादें हृदय पटलपर धरना देने लगी जब देवदत्त डॉक्टरीकी पढ़ाई करता था। परीक्षाके दिनोंमें रात-रात भर जग कर उसकी सार-सँभाल रखती। देरतक पढ़ते रहनेके लिये बीच-बीचमें चाय बनाकर पिलाती। नींद न आये, इसके लिये बीच-बीचमें बातें करती और कहती 'बेटा! परीक्षामें सफलताके लिये जबतक आत्मविश्वासरूपी सेनापति आगे नहीं बढ़ता तबतक सब शक्तियाँ चुपचाप खड़ी मुँह ताकती रहती हैं। सफल लोगोंको असफल लोगोंसे अलग करनेवाली इकलौती चीज यह है कि वे बहुत कड़ी मेहनत करनेके इच्छुक हैं' बेटा! सदा ध्यान रखो दुनियाँमें वे जीत जाते हैं जिन्हें ये विश्वास होता है कि वे जीत सकते हैं। ये सारी बातें स्वप्नवत् हो गयीं।

आज देवदत्तकी माँ नैराश्यनदमें गोते लगा रही थी। उसका मन टूट रहा था। बहूको आखिर हो क्या गया है? क्या बुढ़ापेमें सभीके साथ ऐसा ही होता है? नहीं··· नहीं यह तो आयातित संस्कारोंका दुष्प्रभाव ही है। शारदाने प्रत्युत्तर देना उचित समझा और लिखा—

बहू रंजना,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर आश्चर्य इसीलिये नहीं हुआ कि वास्तवमें शहरी जीवनके खर्चको मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने जिस कोठरीको चार माहके लिये शरण-स्थली बनाया था, उसके दस हजार रुपये किरायेके अवश्य मिल जाते। तुम चिन्ता मत करो, शीघ्र ही इस नुकसानकी भरपाई हो जायगी।

मेरी भी एक बात ध्यानसे सुनना। उस समय तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ रहा होगा। २६ वर्ष पूर्वकी बात है, तुम्हारे पति देवदत्तके लिये मैंने एक वातानुकूलित भव्य आवास गृहकी व्यवस्था की थी। जहाँ समस्त प्रकारकी सुविधाएँ उपलब्ध करायी गयीं। सन्तुलित भोजन, पोषक पेय पदार्थ, शुद्ध आबो हवा, रोगोपचारकी सारी व्यवस्थाएँ, आँधी-तूफान, सर्दी-गर्मी, वर्षा-धूपसे सुरक्षित रखनेहेतु आवश्यक प्रबन्ध, निरोगी जीवनके लिये कभी-कभी डॉक्टरी जाँच एवं परामर्श भी लेती रही, इसकी सेवामें रहते मैं कभी बीमार भी हो जाती, हाथ-पैर टूटने लगते, कमर-दर्द बढ़ जाता, जी मचलाने लगता, दाना-पानी छूट जाता, सब कुछ सहते हुए भी देवको किसी प्रकारका कष्ट नहीं हो, इसका सदैव ध्यान रखा। स्वर्गका-सा सुख दिया है मैंने उसे। यह व्यवस्था ९ माहतक निरन्तर बनाये रखी और इसके जन्म लेनेके बादकी व्यवस्थाएँ तो अलग ही हैं।

क्या कभी मैंने इस प्रकारकी आवासीय व्यवस्थाका आकलन कर किराया निर्धारित करनेका मन बनाया था? नहीं—कभी नहीं; क्योंकि मैं एक माँ हूँ न! और कोखकी कीमत कभी नहीं हुआ करती। पत्रके साथ हस्ताक्षरित खाली चेक भेज रही हूँ, देवदत्तसे कहकर अस्पतालके किसी कोनेमें रोगी आवासहेतु सुविधाजनक कमरे बनवा देना ताकि किन्हीं असाध्य रोगोंसे पीड़ित देवदत्तोंकी माँको किरायेका मकान न लेना पड़े और सारी सुविधाएँ निःशुल्क प्राप्त हो सके और हाँ उसी चेकसे अपने चार माहका किराया राशि भी प्राप्त कर लेना और उस भवनपर लिखा देना—'सेवा-सदन।' देवदत्तको ढेर सारा आशीर्वाद।—अभागी शारदा

रामकथामें मुसलिम साहित्यकारोंका योगदान

(श्रीबद्रीनारायणजी तिवारी)

रायबरेलीके मुसलिम भक्त कविवर श्रीअब्दुल रशीद खाँ 'रशीद' ऐसे कवियोंमें हैं, जिन्होंने आशु कविताके अलावा रामकी खोज-खबर उपासनाके स्वरोंमें ली है। श्रीरामके चरणोंमें रशीदजीकी उन पंक्तियोंको लिख रहे हैं, जो हमारी कृति—'रामकथा और मुसलिम साहित्यकार' में उन्हींकी हस्तलिपिमें श्रीरामके चरणोंमें निवेदित हैं—

बड़े खुशामद प्रिय भये तुम्हहूँ हे अवधेश!
गिरयो विभीषण चरण पै ताहि कियो लंकेश।
तुमहूँ दुष्टन ते दबत गुप्त नहीं यह बात
झारयो पोंछ्यो पगन कहँ जब भृगु मारी लात॥

दूसरे वयोवृद्ध बस्ती जनपद (उ०प्र०)-के कवि 'वास' ने रामकथाके अचर्चित पात्र दशरथकी रानियोंमें महारानी 'सुमित्रा' का गुणगान किया। कविवर श्रीअब्बास अली 'वास' की पैनी दृष्टिमें कौसल्या और कैकेयीकी तुलनामें सुमित्राकी ओर अधिक ध्यान जानेका कारण 'वास' जीके शब्दोंमें शायद यह है—

एक पूत राम बनवासी का उपासी बना
दूसरा भगत भक्त भूषण भरत का।
एक हरि सेवा में बनेवा बन-बन फिरा
धारक अपर जन सेवा के बरत का॥

हिन्दी-उर्दूकी साझा संस्कृति समाजसे किस प्रकार जुड़ी हुई हैं, इसकी एक बानगी देखें—

जो खुदा मेरा वही तेरे प्रभु श्रीराम हैं।
एक ही बात है कहने को फकत दो नाम हैं॥

कानपुरके युवा कवि अंसार कम्बरीकी 'मनमें दिया जलाओ रामका' शीर्षक रचनाकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अपने मन में जलाओ दिया राम का,
नाम लेते रहो बस सियाराम का।
नाम जिसने भी लिया मन से राम का,
यों समझिये कि वो हो गया राम का॥
लोक निंदा न हो, त्याग दी प्रिय जानकी,
रूप ये भी दिखायी दिया राम का।
चाहे सागर हो, रावण हो या काल हो,
'कम्बरी' किसने क्या कर लिया राम का॥

अयोध्या-फैजाबादके कवि इस्लाम खाँ सालिककी रचनाका शीर्षक 'बिछड़ गये हैं राम!' की प्रस्तुत पंक्तियाँ रामके बनवास जानेकी आज्ञा दशरथके सुनानेके बादके दृश्यको प्रस्तुत करती हैं—

सुबहे बनारस ले सिसकारी,
रोये अवध की शाम-बिछड़ गये हैं राम।
राजा ने जब वनवास सुनाया,
कैसे मन अपना समझाया।
एक रानी की मनमानी से,
जग में मचा कोहराम-बिछड़ गये हैं राम॥
सूनी सूनी गलियां सारी,
बाग बगीचा बन फुलवारी।
सूनी है सगरी अयोध्या नगरी,
सूने हैं चारों धाम-बिछड़ गये हैं राम॥

प्रख्यात राष्ट्रीय शायर पद्मश्री बेकल उत्साहीकी इन पंक्तियोंमें कितना भाव भरा है, अवलोकन करें—

साकार हो तो भेद बता क्यों नहीं देते,
हे राम! हमें अपना पता क्यों नहीं देते?
हम कागजी रावन को जला देते हैं हर साल,
तुम भीतरी रावन को मिटा क्यों नहीं देते?
जो लोग गरीबों को समझते हैं बहुत नीच,
शबरी के उन्हें बेर खिला क्यों नहीं देते?
मानवता जहाँ धर्म की सांसों की महक हो,
ऐसा ही मेरा देश बना क्यों नहीं देते?

दतिया मध्य प्रदेशके कविवर नवीबख्श 'फलक' अपने समयके सफल रचनाकारोंमें थे। 'फलक' तुर्की टोपी लगाकर कवि-सम्मेलनोंमें जाकर सर्वप्रथम अपना परिचय देते थे। वे सुविख्यात पीताम्बरा पीठ दतियाकी सुन्दर ढंगसे व्याख्या करते हुए कहते कि मैं वहाँसे आया हूँ, इस प्रकार अपना परिचय देते हुए वे काव्यपाठ शुरू करते थे। उनकी

'अवधपुरीके नाथ' शीर्षक रचनाकी प्रस्तुत पंक्तियाँ उनके राम-प्रेमका परिचय देनेके लिये पर्याप्त हैं—

राम लखन अरु जानकी रोके बनहिं न जायँ,
कठिन भूमि कोमल चरण 'फलक' पड़ेंगे पायँ॥
दशरथ वृद्ध, राज्य-भार कौं संभारिहै को,
कैसे फिर चौदह वर्ष कढ़ पैहें नाथ।
कोमल चरण, बनभूमि है कठोर महा,
पाँयन में 'फलक' तिहारे पड़ जैहें नाथ॥
चलत कोर बन भूमि में, लक्ष्मन सीता साथ,
चरण सरोजन में 'फलक' पर रहो रघुनाथ।

एक शताब्दी पूर्व विद्वान् ज्योतिर्विद् अहमद बख्श थानेसरी हरियाणामें निवास करते थे। वह श्रीरामके अनन्य भक्त थे। उन्होंने पूरी रामायण श्रीराम-जन्मसे राम-राज्याभिषेकतक लिखकर एक नये अध्यायका शुभारम्भ किया। उन्होंने हरियाणाकी चंबोली भाषामें काव्य रचनामें पूरी रामायण लिखी—उसे हरियाणा साहित्य अकादमीने 'अहमद बख्शकृत थानेसरी रामायण' नामसे प्रकाशित किया, वह जन सामान्यमें आज भी चर्चित है। रचनाकार ज्योतिषके भी बड़े विद्वान् थे, इसलिये इस रामायणमें ग्रह-नक्षत्रोंकी विशेष चर्चा हुई है।

बस्ती जनपदके एक श्रमजीवी, जिनका नाम रहमान अली 'रहमान' है, जो वहाँ रिक्शा चलाते हुए कई काव्यकृतियोंका प्रकाशन भी कर चुके हैं। उन्होंने कई विधाओंमें रामकी गाथाकी रचनाओंपर लेखनी चलायी है। उदाहरणार्थ एक गजलकी चार पंक्तियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

कुछ भी फिकर मुझको नहीं है नाम की।
दिल में आस्था जब लगी श्रीराम की॥
गर जान भी ले ले जमाना गम नहीं।
जपता रहूँगा नाम मैं सुखधाम की॥

इसके अलावा भी इन्होंने कई काव्य कृतियोंकी रचना की, इनकी सबसे चर्चित कृति 'रहमान रामका प्यारा है' है। इनकी रचनाओंमें सर्वाधिक चर्चित लम्बी रचना—'कैकेयी कथा' है।

अब मैं ऐसे मुसलिम मनीषीकी चर्चा कर रहा हूँ, जिन्होंने हिन्दीमें दर्जनों ग्रन्थोंका सृजन किया है, वे अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालयके पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष भी थे। डॉ० नजीर मुहम्मदके नामसे प्रसिद्ध उन मनीषीका आत्मपरिचय इस प्रकार है—

मैं मुस्लिम हूँ मेरा मजहब सदा यही देता है ज्ञान।
देश प्रेम सर्वोच्च धर्म है 'हुब्बुल वतने मिनल ईमान'॥
कुरान मेरा धर्म-ग्रन्थ रामायण मेरा जीवन-पथ है।
गीता और हदीसों से भी पाया मैंने जीवन-रस है॥

डॉ० नजीर मुहम्मदकी काव्यकृति 'शतक-त्रयी' के प्रारम्भिक पृष्ठपर 'दलितोद्धारक-राम-शतक' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

दलितोद्धारक राम प्रभु, कीजै कृपा महान्।
वंचित-जन जा जगत में, पावहिं सुख सम्मान॥
अमित स्नेह-श्रद्धा सहित, बिनवहु बारहिं बार।
दलितोद्धारक राम प्रभु करहु 'शतक' स्वीकार॥

डॉ० नजीर मुहम्मदने केवट, अहल्या, जटायु, भीलनी शबरी, गिलहरी, रजक आदिके प्रसंगोंका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है, जिससे उस राजतन्त्रमें लोकतन्त्रकी महत्ताको अभिव्यक्ति मिलती है—

रामकथा में है बड़ा, महत्त्वपूर्ण एक भाग।
लोकाराधन के लिये, सीता का परित्याग॥
इक अनुसूचित जाति के, व्यक्ति की अभिव्यक्ति।
सामाजिक-मत मानकर, तजी प्रिया अनुरक्ति॥
तनिक रजक के कथन पै, सीता पत्नी त्याग।
रामचन्द्र जरिबे करे ग्लानि, विरह की आग॥
दलित जाति की भीलनी, ताके जूठे बेर।
खाए रुचि सों राम जी, प्रेम भावकूँ हेर॥
सबरी भाव विभोर के, अमृतोपम बेर।
लक्ष्मन आँखि बचाइके, फेंके करी न देर॥
सीता-हरन संदेश दै, तजे गीध ने प्रान।
स्वयं श्राद्ध कर राम ने, दियो पिता सम मान॥
वन-गमन के समय ही, सरयू तट को पाय।
आ अनुसूचित जाति के, केवट करी सहाय॥

कविवर श्रीफैयाज अहमद 'परवाना प्रतापगढ़ी' लालगंज, प्रतापगढ़ अवधक्षेत्रके कवियोंमें सशक्त हस्ताक्षर

हैं। इनकी नवप्रकाश्य काव्यकृति 'राम रसायन' पर अनेक मनीषियों—रचनाकारोंने प्रशंसामें लेखनी चलायी है। उसकी कुछ पंक्तियाँ बानगी तौरपर प्रस्तुत कर रहा हूँ।

भगवान् रामके वनगमनकालमें उनका रूप-स्वरूप देखकर ग्रामीण नर-नारी धन्य होते हैं। बधूटियाँ परस्परमें उनके सुन्दर रूपका जो रोचक चित्रण करती हैं, परवानाजी उसे बड़े रोचक अंदाजमें कहते हैं—

एक सखी दूसरी सखि से, कुछ बोलत की सरमाय रही।
तिसरी कै न कंठ खुला तनिकौ, धरती पै गिरी मुरझाय रही॥
अस सुंदर रूप न देखा कतौं, देहियां-देहियां सिहराय रही।
सुकुमार सरीर सुसोभित, कर तीर-कमान सोहाय रही॥

बिना सीढ़ीके जैसे अट्टालिकापर चढ़ना अति कठिन कार्य है, जैसे बिना रसूलके अल्लाहतक पहुँचना कठिन है, वैसे ही साहित्यकारकी दृष्टिमें रामदूत—हनुमान्‌के बिना रामतक पहुँचना मुश्किल है। तभी परवानाजी उस असीम शक्तिका यशोगान अपने शब्दोंमें इस प्रकार करते हैं—

प्रभुराज सिया अवधेसपुरी, श्री मानस-वेद-पुरान की जै।
जन-मानस के इस प्रेम की भी, श्री राम-कथा-रसपान की जै॥
एक साथ कहैं सब लोग यही, इस भारत देश महान की जै।
'परवाना' पुकारे यही मन से, बजरंग बली हनुमान की जै॥

हरदोई जनपदमें महाकवि 'रसलीन' के गाँवमें जन्मे डॉ० रफीक अहमद 'रससिन्धु' अपनी सरस वाणीसे कवि-सम्मेलनोंमें छा जाते हैं, उनकी ये सामयिक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

राम के राज्य में चारों दिशाओं में प्रेम था थी दया और भलायी।
किंतु क्या आज हुआ है कि पूछति ही नहीं कोई भी पीर परायी॥

आजसे ६६ वर्ष पूर्व अप्रैल १९४७ ई० को जनाब सैय्यद मुहम्मद रिजवी 'मख्मूर' ने 'रामनौमी' शीर्षक लेखमें अपनी भावनाओं को किस प्रकार रेखांकित किया है, द्रष्टव्य है—

'रामनौमी' के जश्नमें मेरी शिरकतसे बाज भाइयोंको खुशी और बाजको ताज्जुब होगा। जिन्हें खुशी है, मैं खुद उनसे ज्यादा खुश हूँ, लेकिन जिन्हें ताज्जुब है, उन्हें पहले यह बताना चाहता हूँ कि इस जलील जमानेके बदनसीब हिन्दू और मुसलमानोंकी बदमजगी हमेशा कायम रहनेवाली नहीं है, वह वक्त दूर नहीं है, जब हमारी जिन्दादिल शरीफ आजाद औलादें इस भयानक जमानेको याद करके शरमायेंगी और भारतकी तारीखके इस स्याह-सफेदको अपने दामनका सबसे गन्दा धब्बा समझेंगी। इस जमानेमें सबसे बड़ी देशभक्ति यह है कि हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरेके तमद्दुनको समझें और उसकी इज्जत करना सीखें।'

'मैं भी इसी पाक सर जमीनका गेहूँ खाता हूँ, इसका पानी पीता हूँ और यहींकी हवासे मेरी जिन्दगी कायम है। मेरा गोश्त, मेरी हड्डी इसी जमीनकी पवित्र मिट्टीकी दूसरी शक्ल है। आज शाम रामभक्ति मुझे यहाँ खींच लायी है तो यह न समझिये कि मैं रामचन्द्रजीको सिर्फ एक हिन्दू अवतार समझकर, यहाँ हाजिर हुआ हूँ। नहीं हरगिज नहीं। मैं एक हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे खुद उनकी जातपर नाज करता हूँ, उन्हें अपना हीरो समझकर अपनेपर फख्र करता हूँ और इस जोशमें कि ये मेरे वतनके राजा और महासेवक थे, अपना सिर ऊँचा कर लेता हूँ।'

विद्वान् लेखक सैय्यद मुहम्मद महमूद 'मख्मूर' ने त्यागकी नगरी 'चित्रकूट' का अपनी कलमसे कितने मार्मिक ढंगसे वर्णन किया—'रामचन्द्रसे निगाह हटे तो भरत और लक्ष्मणतक आये। यह दोनों शहजादे भाईके मुहब्बतके ऐसे दीवाने थे कि अपनेका होश न था। मैं हैरान हूँ कि दोनोंमें किसको ज्यादा वफादार कहूँ। काँटेमें तौल दीजिये तो दोनों गालिबन बराबर उतरेंगे। एकने मुहब्बतके जोशमें तख्तो-ताजसे मुँह फेरकर संन्यास ले लिया तो दूसरा हर मुसीबतमें सायाकी तरह दमके साथ है। मैं जिस वक्त यह तस्वीर जेहनके सामने खींचता हूँ कि भरतने रामचन्द्रजीके खड़ाऊँ तख्तपर रखकर चित्र लगा दिया और खुद फकीर हो गये तो दिल लरज आता है। अल्लाह! वह इंसान किस तरहका होगा जो ऐसी सोर चश्मी, इतनी आलमी हिम्मत दिखा सकता है। ये ही वे बातें हैं, जो बताती हैं कि हुकूमत

और दौलत, आराम और राहतसे बढ़कर कोई चीज भी है और उसका नाम मुहब्बत है।' वस्तुतः रामकथामें सत्ता-त्यागका जो संघर्ष हुआ, वह अपने ढंगमें वर्तमान सत्ता, संघर्षके युगमें अजूबा-सा लगता है।

चित्रकूट और अब्दुर्रहीम खानखाना एक-दूसरेके पर्याय बन चुके हैं, सैकड़ों वर्षों बाद भी उनकी ये पंक्तियाँ जन-जनका कण्ठहार बन चुकी हैं—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश॥

भगवान् श्रीरामपर रहीमजीकी कितनी श्रद्धा थी, वह निम्न पंक्तियोंसे प्रकट होता है—

दुख नर सुनि हांसी करैं, नाहिं धरावत धीर।
कहीं सुनै, सुन दुख हरैं, रहिमन वे रघुबीर॥

अर्थात् लोग दूसरेका दुःख-दर्द सुनकर हँसी उड़ाते हैं, उसे सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले तो दशरथनन्दन 'श्रीराम' ही हैं।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'रहीम' के विषयमें उचित ही कहा है—

'अपने धर्म और आध्यात्मिक विश्वासपर सुदृढ़ रहकर भी मुसलमान कितना अधिक भारतीय हो सकता है, रहीम इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।'

प्रथम रामायण मेलाके समापन भाषणमें तत्कालीन महामहिम राज्यपाल अकबर अली खाँने कहा—'मेरा भाग्य है कि आप लोगोंके बीच पवित्र भूमि चित्रकूटमें हूँ। रामायणके सिद्धान्तोंको हम जीवनमें उतारें, जिन्दगीमें लायें। सभी इंसान समान हैं—यही पैगाम तुलसीका है। यही सन्देश रामायणका है। इसी भावनाको लेकर मैं रामायण और तुलसीको सलाम करने आया हूँ।

भगवान् श्रीरामकी लीला-स्थली चित्रकूटको दीन मुहम्मद 'दीन'की पंक्तियोंमें अवलोकन करें'—

'अवध अयोध्यासे भी पावन है चित्रकूट,
प्रकृतिने सुषमा समूची ही बिखेरी है।'
कल-कल स्वर है मन्दाकिनी पयस्वनीका,
गूँजे ध्वनि राम-सीता मठमें धनेरहि।

× × ×

सिया-राम-लखन, पवन-सुत संग-संग
पूरे चित्रकूटको प्रणाम है।

साहित्य-मनीषी डॉ० शैलेश जैदी (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय)-ने चर्चित खड़ी बोलीमें राम काव्यकृति—'अब किसे बनवास दोगे' की रचना की, जिसकी सुप्रसिद्ध हिन्दी विद्वान् और इलाहाबाद विश्वविद्यालयके पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ० जगदीश गुप्ताने भी प्रशंसा की है, उसके चित्रकूट-वर्णनका अनोखी शैलीमें भावपूर्ण वर्णन डॉ० शैलेश जैदीने किया है, कुछ अंश इस प्रकार हैं—*'आदमीकी भाषा/प्यारके अटूट सम्बन्धोंकी भाषा है। यह भाषा आदमीको देती है चित्रकूटकी ऊँचाई/विचारोंकी गरिमा/सम्बन्धोंकी गहराई। वह भाषा कतरती है अफवाहोंके पंख/मिलाती है भाईको भाईसे/बेटेको माँसे, इस भाषाको समझता है/ अयोध्याका एक-एक आदमी, शायद इसलिये भरतकी एक आवाज/उगाती है अयोध्यामें सैकड़ों फूल/भरती है फलोंमें सुगन्ध/निकालती है अयोध्याकी गलियों, सड़कों और मकानोंको चित्रकूटसे।'*

यह भरतके व्यक्तित्वकी गरिमा है कि वह उठाता है/ कैकेयीके चेहरेपर पड़ी सुनहरी नकाब/तोड़ता है राजमाता बननेका ख्वाब।''''

मेरे अन्तरके बीचों बीच गंगाकी तरह बहती है/उस गंगाकी तरह जो मेरी माँ है/जो मेरा देश है, जो भरत रामके रिश्तेकी/रुपहली दस्तावेज है—चित्रकूट।

सुविख्यात कथाशिल्पी पद्मश्री डॉ० नरेन्द्र कोहलीके अनुसार एकहीमें एकसे अधिक धर्म उत्पन्न हो सकते हैं। इसे ही हम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहते हैं। रामकथाके ये मुसलमान रचनाकार भी अपनी उसी संस्कृतिसे अभिभूत होकर लिख रहे हैं। ज्ञातव्य हो फारसीमें २०० रामायणें लिखी जा चुकी हैं या अनूदित हो चुकी हैं। इसीलिये भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी ये पंक्तियाँ याद आ गयीं—*'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दुन वारिये।'*

पढ़ना और है, गुनना और!

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर 'प्रेम'के पढ़े सो 'पंडित' होय॥

शिक्षाका दिन-दिन प्रचार बढ़ रहा है। स्कूल खुल रहे हैं, कॉलेज खुल रहे हैं, विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, शोध-संस्थान खुल रहे हैं। पढ़ाईके लिये सुविधाएँ बढ़ायी जा रही हैं। बजटमें लाखों-करोड़ों रुपयोंका आयोजन किया जा रहा है। शिक्षा-आयोग बन रहे हैं। देशी, विदेशी, अन्ताराष्ट्रीय संस्थाएँ खड़ी की जा रही हैं। बच्चोंके लिये, स्त्रियोंके लिये, अधवयसोंके लिये पढ़ाईका प्रबन्ध हो रहा है। अज्ञानके अन्धकारको मिटानेके लिये विश्वभरके विद्वान्, राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक ज्ञानकी जलती हुई मशालें लेकर बाहर निकल पड़े हैं। ऐसा लगता है कि कुछ ही बरसोंके भीतर विश्वसे अशिक्षा और अज्ञानका नामोनिशान ही मिट जायगा।

बहुत खूब।

कौन न स्वागत करेगा इस शिक्षा-अभियानका?

× × ×

'अँगूठाछाप' लोग शेक्सपीयर और मिल्टनपर, कैंट और हैगेलपर बहस करने लगें; ज्ञान और विज्ञानकी प्रगतिपर वाद-विवाद करने लगें; राजनीति और समाजशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञानकी गुत्थियाँ सुलझाने लगें—इससे बढ़कर और क्या चाहिये? अशिक्षित लोगोंका बौद्धिक धरातल ऊँचा उठे, वे भी अपनेको, समाजको, विश्वको भलीभाँति समझकर अपनी और परायी समस्याओंपर चिन्तन करने लगें, इससे अच्छा और क्या होगा? आज जिनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' है, कल वे ही संयुक्त राष्ट्रसंघमें उपस्थित समस्याओंपर, संसद् और विधानसभामें उपस्थित बिलोंपर अपने मत व्यक्त करने लगें, तो इसका स्वागत कौन न करेगा?

अज्ञानान्धकारको मिटानेके लिये किया जानेवाला कोई भी आन्दोलन प्रशंसनीय है, अभिनन्दनीय है। बर्ट्रैण्ड रसेल लिखते हैं—

'Happiness is of two sorts. The two sorts I mean might be distinguished as plain and fancy, or animal and spiritual, or of the heart and of the head. Perhaps the simplest way to describe the difference between the two sorts of happiness is to say that one sort is open to any human being, and the other only to those who can read and write.'*

'प्रसन्नता दो प्रकारकी है—एक तो सीधी-सादी, दूसरी कल्पना-मिश्रित। एक पाशविक, दूसरी आध्यात्मिक, एक हृदयकी, दूसरी मस्तिष्ककी। एकका आनन्द कोई भी मनुष्य उठा सकता है, दूसरीका आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं, जो पढ़े-लिखे हैं।'

मतलब नाख्वांदा लोग उस प्रसन्नतासे वंचित रह जाते हैं, जो पढ़े-लिखे लोगोंके ही हिस्सेमें लिखी रहती है।

जरूरी है कि प्रसन्नताका यह आनन्द हर आदमीको मिल सके। इसलिये हर आदमीको साक्षर होना ही चाहिये।

× × ×

परंतु क्या साक्षरतासे ही विश्वकी सभी समस्याओंका निदान निकल आयगा?

पोथी पढ़ लेनेसे ही आजकी स्थितिमें कल्पनातीत सुधार हो जायगा?

शिक्षाका प्रचार होनेसे ही अज्ञानका पर्दाफाश हो जायगा? मनुष्यका सर्वांगीण विकास हो जायगा?

जी नहीं। बात ऐसी नहीं है।

रस्किनने इस समस्यापर गम्भीरतासे सोचा था। वह कहता है—

'You might read all the books in the British Museum and remain an utterly 'illiterate' uneducated person; but if you read ten pages of a good book, letter by letter······that is to say, with real accuracy,······you are forever more in some mea-

* Bertrand Russell : The Conquest of Happiness. p. 93

sure an educated person.'*

'ब्रिटिश म्युजियमकी सारी किताबें पढ़कर भी आप 'अशिक्षित' मनुष्य बने रह सकते हैं और किसी अच्छी पुस्तकके केवल दस पन्ने पढ़कर भी आप किसी हदतक 'शिक्षित' बन सकते हैं, बशर्ते कि आप पढ़ें ठीकसे, प्रामाणिकतासे।'

यह 'ठीकसे' पढ़ना क्या है?

इसका नाम है—'गुनना'।

पढ़ना और है, गुनना और।

आज पढ़े-लिखे तो हजारों हैं, लाखों हैं, करोड़ों हैं, पर गुने हुए लोग कितने हैं। शायद अंगुलियोंपर गिननेलायक मुश्किलसे निकलेंगे।

× × ×

आजसे ६६ साल पहले स्वामी रामतीर्थने अपने 'अलिफ्' नामके रिसालेमें एक लेखमें इसका एक बढ़िया उदाहरण दिया था।

बचपनमें जब कौरव और पाण्डव एक साथ पढ़ते थे तो एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गयी। किसी विद्यार्थीने आधी किताब सुना दी, किसीने पूरी। पर युधिष्ठिरसे पूछा गया तो उसने कहा—'मैंने तो केवल दो वाक्य याद किये हैं।'

परीक्षक महाशयको अत्यन्त क्रोध हो आया। वे बोले—'अरे दुष्ट! तू तो सबसे बड़ा है और अभीतक सिर्फ दो वाक्य याद किये। यह कैसी सुस्ती है। तुझे लज्जा नहीं आती? चुल्लूभर पानीमें डूब मर।'

परीक्षकने इतनेसे ही बस न की। लगे चपत-पर-चपत मारने! बेचारे राजकुमारके कपोल लाल हो गये, पर वाह रे राजकुमार! उफ्तक नहीं की। शान्त खड़ा रहा।

यह देख परीक्षकको अत्यन्त विस्मय हुआ। सोचा कि आज दुर्योधनको किसी अपराधपर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारनेको तैयार हो गया था। भगवन्! यह कैसा राजकुमार है कि इसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया है और इसने चूँतक नहीं की। प्रसन्नवदन खड़ा है।

अब युधिष्ठिरका हाल सुनिये। अक्षर-परिचय होनेके बाद पहला ही वाक्य गुरुजीने बताया था—'क्रोध मत करो।'

सुशील बालक तभीसे एकान्तमें जाकर उसपर विचार करने लगा। कानोंसे सुने पाठको रोम-रोममें उतारने लगा। बेचारे युधिष्ठिरको उस शिक्षा-कलाकी खबरतक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पण्डित लोग विद्यारूपी गंगाकी नहर अपने मस्तिष्कपर इस सफाईके साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहरके साथ एक बूँद भी पुलसे नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गंगा बहती हैं और निचला हिस्सा सूखा-का-सूखा पड़ा रहता है। देखनेमें तो सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओंमें पूरे-पूरे नम्बर हासिल किये, विश्वविद्यालयमें पारितोषिक और पदक प्राप्त किये, किंतु भीतर एक बूँद भी न पड़ने दी। आचरणमें कुछ प्रवेश न होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कलासे बिलकुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदयमें उतरने लगा।

उसके विचार-क्रमका रूप यह था—

'क्रोध मत करो'—भला क्योंकर? हमें तो क्रोध आ जाता है। क्यों आता है? उचित है या अनुचित? क्रोधके बिना काम चल सकेगा या नहीं? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जायँगे, काम अच्छा न करेंगे, रोब उठ जायगा, प्रबन्ध बिगड़ जायगा, रसोई समयपर न तैयार होगी। आदि।

क्रोधको छोड़नेमें कठिनाइयाँ तो होंगी, पर क्या क्रोधको छोड़ना असम्भव है? यदि असम्भव होता तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही न देते। शास्त्र ही ऐसा अनुशासन क्यों देते?

अब क्या करें? क्रोध तो आ ही जाता है। तो क्या यह उचित होगा कि मान तो लिया जाय कि क्रोध करना अनुचति है, पर समयपर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें? नहीं, यह तो छल है। गुरु और शास्त्रके साथ धोखेबाजी है। मुँहसे 'हाँ' कर लेना और अमलमें 'न' लाना।

अबसे दृढ़ संकल्प करते हैं कि 'क्रोधको पास न फटकने देंगे।'

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है? प्राय: जब कोई काम

* Ruskin : Sesame and Lilies. p. 14

बिगड़ता है या कोई चीज खराब हो जाती है तो क्रोध आता है। अरे मन! काम तो एक बार बिगड़ चुका। तू उसपर चित्तको क्यों बिगाड़ता है? चीज तो खराब हो गयी, होगी दस, बीस, पचास, सौकी, पर उसके लिये चित्त-जैसी अनमोल चीजको क्यों खराब कर बैठता है? आनन्द मेरा जन्मजात स्वत्व है। किसी सांसारिक वस्तुके लिये इस जन्मजात स्वत्वको क्यों खोऊँ?

राजकुमारोंके यहाँ रिवाज तो है कि बात-बातपर उरदकी पीठीकी तरह ऐंठना, किंतु गुरुजीका उपदेश है—'शान्त रहो, मनको हिलने ही न दो।' गुरुजीकी इस आज्ञाका मैं पालन करूँगा, चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते युधिष्ठिरने उन तमाम मौकोंको याद किया, जहाँ उसकी शान्तिके पैर फिसला करते थे और अपने-आपको खूब समझाया—'ऐ अनजान मन, अबतक जो हुआ सो हुआ। आगेसे ऐसे कोमल समयोंपर सँभलकर चलना। जब कोई कुछ कटुवाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे खिलाफ साजिश रचे अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, तब तू शान्त रहा कर।'

इसके पश्चात् युधिष्ठिरने बहुत बार जान-बूझकर अपने-आपको ऐसे स्थानोंपर पहुँचाया, जहाँ दुर्योधन आदिने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किंतु युधिष्ठिरने हर बार 'क्रोध मत करो'—इस पाठका व्यावहारिक अनुभव सफलताके साथ किया। जब क्रोध बिलकुल छूट गया तो चित्तमें चैन रहने लगा। आनन्द और प्रसन्नताने रंग जमाया, मानो मुफ्तमें खजाने हाथ आ गये। अनुभवने युधिष्ठिरको यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगोंका यह ख्याल गलत है कि 'क्रोधके बिना काम नहीं चल सकता।'

परीक्षक महोदयने जब देखा कि युधिष्ठिरपर मारका कोई असर नहीं हो रहा है, तब वे समझे—'ओहो! यह लड़का तो हमारा भी गुरु है। यह हमको सिखा रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं?'

उनकी आँखोंमें आँसू डबडबा आये। बच्चेको गोदमें लेकर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

इल्म चंदां कि वेशतर रब्वानी,
चूं अमल दर तो नेस्त नादानी।

'तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाय, यदि उसपर अमल नहीं है, तो सिर्फ नादानी है।'

× × ×

तो, इसका नाम है पढ़ना, इसका नाम है गुनना।

लोग पढ़ते हैं ऊँचा पद पानेके लिये। धन कमानेके लिये। लोगोंसे प्रशंसा पानेके लिये। ऊँचा रुतबा पानेके लिये।

कुछका यह हौसला पूरा हो जाता है।

पर यही तो जीवनका लक्ष्य है नहीं।

यही तो जीवनकी प्रगति है नहीं।

रस्किनके शब्दोंमें जीवनकी प्रगतिकी व्याख्या यह है—

'He only is advancing in life, whose heart is getting softer, whose blood warmer, whose brain quicker, whose spirit is entering into Living Peace.'

'केवल उसीका जीवन प्रगतिकी ओर जा रहा है, जिसका हृदय दिन-दिन मुलायमसे मुलायम होता जा रहा है, जिसके रक्तकी ऊष्मा बढ़ती जा रही है, जिसका मस्तिष्क दिन-दिन तीक्ष्ण होता चल रहा है और जिसकी आत्मा स्थायी शान्तिकी दिशामें प्रवेश करती आ रही है।'

× × ×

शिक्षाका लक्ष्य, विद्याका लक्ष्य है—मुक्ति।

'सा विद्या या विमुक्तये।'

हम नाना प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त न हुए, मानव मानवको बाँटनेवाले कटघरोंमें ही कैद बने रहे तो धिक्कार है हमारी शिक्षापर, धिक्कार है हमारी विद्यापर।

हमारे यहाँ तो इसीलिये कहा है कि एक ही शब्द पढ़ लो—ढाई अक्षरका छोटा-सा शब्द है—'प्रेम'। बस, बेड़ा पार है।

मानव-मानवसे प्रेम। पशु-पक्षीसे प्रेम। कीट-पतंगसे प्रेम। पेड़-पौधोंसे प्रेम। चर-अचरसे प्रेम। सृष्टिसे प्रेम, सृष्टिकर्तासे प्रेम।

जीवनकी सार्थकता इसीमें प्राप्त हो जायगी। इसके अलावा न कुछ पढ़नेकी जरूरत है, न कुछ गुननेकी?

मनको वशमें कैसे करें ?

(श्रीराधेश्यामजी चाँडक)

मनके सन्दर्भमें हमारी चिरपरिचित धारणा रही है कि मन चंचल है, मानता ही नहीं इसे वशमें करना बहुत कठिन है। कुछ हदतक बात सही भी है मगर इसे पूर्णतः स्वीकारना ठीक नहीं। कारण, यह कार्य दुष्कर अवश्य है, परंतु असम्भव नहीं।

हम अगर ठोस मन्थनकर इसके कारणोंकी तहतक पहुँचनेका प्रयास करें, जिसकी वजहसे ऐसा होता है तो हम पायेंगे कि इसके पीछे मुख्य एक ही कारण है और वह है—हमारी लालसाएँ, नाना प्रकारकी जिज्ञासाएँ—जो मनके ठहरावका ताना-बाना बिखेरकर उसे अस्थिर कर देती हैं और मनकी यही अस्थिरता उसे चंचलता प्रदान करती है। फलस्वरूप मन इधर-उधर भटकने लगता है।

दूसरा मुख्य कारण 'मोह' है, जो 'मेरा-तेरा' का जन्मदाता है। यह 'मेरा-तेरा' आसक्ति अथवा मन-मुटाव पैदा करता है, जो मनको उसीमें लगा देता है। मन यह सोचनेपर विवश हो जाता है कि कौन मेरा है, कौन पराया और फिर उसीमें रमने लगता है। जहाँ अपना है वहाँ राग है और जहाँ पराया है वहाँ द्वेष। ये 'राग-द्वेष' दोनों सगे भाई हैं। ये ही मनके भटकावकी मूल जड़ हैं। हमारे जीवनमें न राग अच्छा है और न द्वेष। सम और निरपेक्ष बने रहना ही उत्तम है। इसके लिये आवश्यक है कि सम और विषम—दोनों परिस्थितियोंमें हम एक-से बने रहे। सकारात्मक परिस्थितिमें भी उसी प्रकृतिमें रहें जैसा कि नकारात्मक स्थितिमें। यह मनको नियन्त्रित करनेका सबसे सरल उपाय है।

अब तीसरी बात आती है, वह है—हमारी आवश्यकताओंमें कमी करनेकी। जितना जो आवश्यक है, उसीसे काम चलाये। विलासितासे दूर जीवनको सरल, सदाचारी एवं कर्तव्यनिष्ठ बनाये। सादगीमय जीवन सदैव शान्तिमय होगा। मन सन्तुष्ट रहेगा तो निश्चित रूपसे केन्द्रित होगा। मस्तिष्कमें विचारोंके पुलिन्दे नहीं उठेंगे, मन स्थिर रहेगा।

चौथी और आखिरी बात है—हम जन-कल्याणकारी कार्योंमें लगकर अपने-आपको उसीमें व्यस्त रखकर आत्मसन्तुष्टि प्राप्त करें। 'जन-कल्याण' से तात्पर्य है—'जीव-कल्याण'। किसी भी देहधारी जीवात्माको हर सम्भव सुख पहुँचानेका प्रयास करें। निःसन्देह इससे मन-मस्तिष्कको असीम शान्तिकी प्राप्ति होगी। मन चंचलतासे दूर रहकर एकाग्रचित्त और प्रसन्न रहेगा।

ये सब हुए—मनको वशमें करनेके पूर्वप्रयास। अब अगर मन भटक ही गया है तो उसे वशमें कैसे किया जाय? यह हमारा मूल प्रश्न है, जिसपर विवेकपूर्ण विचार करना आवश्यक है। पूर्व इसके कि हम 'मन' पर विचार करें, आइये 'तन' के माध्यमसे इसे सरलतासे समझनेका प्रयत्न करें।

तन अर्थात् शरीर, शरीरके सारे अवयव (अंग) हमारे वशमें रहते हैं। जिसे हम जो आदेश देते हैं, वह उसका त्वरित पालन करता है। हाथोंको जब हम उठाना चाहें, वे तुरंत उठते हैं। पैरोंसे चलने, पटकने, दौड़ने आदिका जो आदेश दें, तदनुरूप वे कार्य करते हैं। ठीक इसी तरह आँख, नाक, कान आदि भी हमारे निर्देशोंका तुरंत पालन करते हैं। एक काम हम करें—४-५ दिनोंतक हम अन्न-जल ग्रहण न करें, पूर्ण रूपसे कोई आहार न लें तब उस स्थितिमें हम आदेश दें—हाथोंको २५-५० किलोग्राम वजन उठानेका; पैरोंको १५-२० किलोमीटर पैदल चलनेका, आँखोंको लगातार जागनेका, तो क्या यह सम्भव है? हमारे आदेश धरे-के-धरे रह जायँगे। चाहकर भी हमारे अंग वे कार्य कर नहीं पायेंगे। क्यों? इसका कारण क्या है? पहले तो वे हमारा सारा कार्य तुरंत कर देते रहे हैं और अब नहीं। सीधा-सा उत्तर है उन्हें खुराक (भोजन) नहीं मिला, जिसके कारण वे

शक्तिहीन हो गये। यही हाल हमारे 'मन' का भी है। उसे हम खुराक तो देते नहीं, जिस वजहसे वह शिथिल हो जाता है और कार्य करनेमें अक्षम हो जाता है। अगर हम 'तन' की तरह 'मन' को भी समय-समयपर सही एवं पर्याप्त 'खुराक' देते रहे तो वह निश्चितरूपसे हमारी अभिलाषाके अनुरूप कार्य करता रहेगा। हमारे आदेशोंका निर्वहन वह अविलम्ब करता रहेगा।

जिस प्रकार हमारे तन (शरीर)-की 'खुराक' हमारा 'भोजन' है, ठीक उसी प्रकार हमारे 'मन' की खुराक 'भजन' है।

अतएव 'प्रभु-भजन' द्वारा मनको वशमें करना बड़ी सामान्य बात है। हम ईश-वन्दना किसी भी रूपमें करें—चाहे वह भजनोंके माध्यमसे हो, जीवसेवा हो, शास्त्र पठन-पाठन हो, सन्त-समागम हो, करुणामय निःस्वार्थ भावसे जीवदया हो, सरल एवं अध्यात्ममय जीवन हो…… मन वशमें अवश्य होगा, इसमें किसी प्रकारकी कोई अतिशयोक्ति नहीं। मनको वशमें करनेका यह सीधा और सरल उपाय है।

कहानी—

जीवनकी उपलब्धि

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

ईसा पूर्व पहली शताब्दीमें रोममें सिसेरो नामका एक विलक्षण विचारक और वाग्मी हुआ। अपने सदाचार, सद्‌विचार और निष्ठापूर्ण जीवनके कारण जनमानसको उसने प्रभावित किया था।

रोमन सभ्यता और संस्कृतिका वह स्वर्णिम युग था। पश्चिममें ब्रिटेन, रोम और स्पेन एवं पूर्वमें मेसोपोटामिया और बेबीलोन तथा दक्षिणमें भूमध्यसागरतटीय अफ्रीकाके देश विशाल रोमन साम्राज्यके अंग थे। रोमकी सड़कोंपर विदेशोंसे लाये सोने, सुन्दरियों और गुलामोंका प्रदर्शन सामन्त बड़ी शानसे करते थे। वह जमाना था, जब संसारकी सभी सड़कें रोमको जाती थीं।

आमोद-प्रमोद, भोग-विलास और बुद्धि-विलास रोमन नागरिकोंकी दिनचर्या थी, तर्क-वितर्कमें पराजित कर देना प्रतिष्ठाकी बात समझी जाती थी। यदि इससे निर्णय नहीं होता तो तलवारें खिंच जाती। रोमके चौकमें असि-द्वन्द्व और वाक्-द्वन्द्वके दृश्य आये दिन देखनेमें आते। सिसेरोके भी व्याख्यान वहाँ होते। उसका सिद्धान्त था कि जनतंत्र ही शासन-संचालनका श्रेष्ठ पंथ है। जनता मंत्रमुग्ध होकर सुनती।

उन दिनों यूरोपमें समता और बन्धुत्वकी बात कोई नहीं कहता था। गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। सुसभ्य ग्रीक और रोममें भी दास सम्पत्तिके रूपमें थे। अरब और अफ्रीकासे लाये सैकड़ों गुलाम रोमन सामन्तोंके घरोंमें रहते।

ईसासे लगभग ५० वर्ष पूर्व सेनापति सीजर फौजके बलपर रोमका एकाधिनायक बन बैठा। जिन्होंने विरोध किया, मौतके घाट उतार दिये गये। प्रान्तोंमें विद्रोहके प्रयासको क्रूरतासे कुचल डाला गया। सीजर! महान् सीजर!! लोग नामसे थर्रा उठते।

यद्यपि सिसेरो व्यक्तिगत विरोधमें नहीं पड़ा, परंतु जनतंत्रके सिद्धान्तोंका रोमन फोरममें डटकर प्रचार करता रहा। उसकी जनप्रियता देखकर सीजरने उसके प्राण नहीं लिये, केवल राजधानीसे निर्वासित कर दिया।

अपने कुछ नजदीकी शिष्यों और गुलामोंके साथ वह एक गाँवमें रहकर जनतंत्रपर ग्रन्थ लिखने लगा। बीच-बीचमें उसे सीजरके आतंक और अत्याचारोंकी खबरें मिलती रहतीं।

अधिनायकवाद महत्त्वाकांक्षी अधिनायकोंको जन्म देता है और अधिनायकका अन्त भी उन्हींके द्वारा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक दिन सीजरके विश्वस्त मित्र और सेनापति ब्रूट्सने सभासदोंकी एक बैठकमें उसकी हत्या कर दी। मरते समय सीजर केवल इतना ही कह पाया "ब्रूट्स! तुम भी……"।

राजधानीमें अशान्ति फैल गयी। विशाल रोमन

साम्राज्यमें अव्यवस्था बढ़ जानेके लक्षण दिखायी देने लगे। सेना लेपिडिसके साथ थी। राजकोष और साधन प्रधानमंत्री एण्टोनीके पास थे। किंतु अधिनायकवादसे त्रस्त जनता थी युवक नेता आक्टेवियसके साथ। तीनोंमें युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं।

आक्टेवियसने अपने गुरु सिसेरोको रोम आनेका निमंत्रण देते हुए लिखा, 'रोमपर भयानक विपत्ति आयी है। बचपनसे ही आपके सिद्धान्तोंका कायल रहा हूँ। जनता मेरे साथ है, परन्तु धन और सेनाकी कमी है। यदि इस संकटकालमें आकर मेरी सहायता करेंगे तो जनतंत्रकी स्थापना सम्भव हो सकेगी।'

मातृभूमिके प्रति अपने कर्तव्यपालनके लिये सिसेरो रोम पहुँचा। बहुत वर्षों बाद आया था। बाल सफेद हो गए थे, दाँत गिर चुके थे, शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी वाणीमें पहलेकी-सी ओजस्विता थी। उसकी सभाओंमें लाखोंकी संख्यामें रोमन नागरिक आने लगे। एण्टोनी, लेपिडिस और आक्टेवियस डर गए कि कहीं जनता विद्रोह न कर बैठे।

आखिर, एक दिन रोमके बाहर तीनोंकी एक गुप्त बैठक हुई। सभी भयभीत थे। तय हुआ कि आपसमें व्यर्थकी लड़ाई क्यों करें। रोमन साम्राज्यके तीन हिस्से हुए—रोम, ब्रिटेन और स्पेन तथा अफ्रीकाके प्रदेश। राज्योंके संचालनके लिये विपुल धनकी आवश्यकता थी। तीनोंने अपने-अपने धनी मित्रोंके नाम बताये। उनको मारकर धन-संग्रहकी योजना बनी। इसके बाद ऐण्टोनीने कहा कि सुचारु रूपसे राज्य-संचालनके लिये सबसे बड़े बाधक होंगे बुद्धिजीवी, अतएव उन्हें भी अविलम्ब समाप्त कर देना चाहिये। ऐसे नामोंकी सूची बनी, पहला नाम था सिसेरोका।

आक्टेवियस इसपर अड़ गया। कहने लगा, 'जिसकी सहायतासे मैं वर्तमान स्थितिपर पहुँच सका, जो मेरे लिये पितृतुल्य हैं, उनकी हत्याके लिये मैं सहमति कैसे दे सकता हूँ।' समझौता उस दिनके लिये रुक गया, किंतु दूसरे दिन उस महान् विचारककी हत्याके लिये तीनों एकमत हो गये। इस प्रकार रोमन साम्राज्यका बँटवारा हुआ।

सिसेरोको सूचना मिल गयी। कुछ समय बाद 'रिपब्लिका' ग्रन्थ पूराकर अपने पुत्र और मित्रोंको सौंपते हुए उसने कहा—'मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हुआ, अब तुम्हें कष्ट न दूँगा।' उन लोगोंने समझानेकी कोशिश की, 'सामने ही द्रुतगामी नौका है, स्वीकृति दें, हम आपको सकुशल ग्रीस पहुँचा देंगे। ग्रीक आपका स्वागतकर गौरवबोध करेंगे।'

सिसेरोका उत्तर था, 'मृत्यु अवश्यम्भावी है, थोड़े दिन जीनेके लिये मातृभूमि छोड़कर नहीं जाना चाहता। इसी मिट्टीमें पैदा हुआ, इसीमें मिल जानेपर मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी, मनुष्यका जन्म एक उद्देश्यसे होता है, उसकी पूर्ति ही जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। अब जीवनका मोह क्यों?'

सूचना राजधानीमें पहुँची। सिसेरोके सिरके लिये बहुत बड़ा इनाम घोषित था। बीसियों सशस्त्र सिपाही उसे बन्दी बनाने आये। उसके साथियोंने अपनी तलवारें निकाल लीं। 'सावधान! रक्तपात नहीं, बिलकुल नहीं' कहते हुए सिसेरोने आत्म-समर्पण कर दिया।

सैनिक उसका सिर और हाथ काटकर रोम ले गये। राजधानीके उसी चौकमें उन्हें सलीबपर टाँगा गया, जहाँ उसने सैकड़ों बार लोगोंको अपने सारगर्भित उपदेशोंसे अभिभूत किया था।

सिसेरोका आत्मोत्सर्ग व्यर्थ नहीं गया, उसका उद्देश्य 'जनतंत्र' जनमानसमें अमर हो गया। सम्राट् और सामन्तोंकी भोगलिप्सा बढ़ती गयी। अत्याचार बढ़ते-बढ़ते कुछ वर्षों बाद सम्राट् नीरोकी सनक और क्रूरतामें साकार हो उठे। अबाध भोग-लिप्साका अगला कदम पतनकी ओर बढ़ता है, वही हुआ। जनताके अन्दर अधिनायकवादसे मुक्तिकी चिनगारीने ज्वालाका रूप धारण किया, उसकी लपटमें नीरो भस्म हुआ। साम्राज्य खण्ड-विखण्ड हो गया और साक्षी देनेके लिये बच गये खण्डहर। [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

मातृशक्ति गौ

(श्रीविष्णुकान्तजी सारडा)

हमारे सनातन धर्ममें शास्त्रोंका कथन है कि पृथ्वीको धारण करनेकी शक्तियोंमें गोका प्रथम स्थान है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

अर्थात् गो, ब्राह्मण, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभी और दानशील—इन सातने पृथ्वीको धारण कर रखा है। गोमाता पृथ्वीका आध्यात्मिक स्वरूप हैं, प्रत्यक्ष रूपसे भी पृथ्वीपर निवास करनेवाली सम्पूर्ण मानवजाति गोमाताके द्वारा जीवन और पोषण प्राप्त करती है। गायसे दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र तो प्राप्त होता ही है, साथ ही उसके बछड़े ग्रामीण कृषिकी आज भी धुरी हैं। लघु और सीमान्त कृषकोंके लिये गो और गोवंशकी आज भी आधुनिक कृषि-उपकरणोंकी तुलनामें अधिक उपयोगिता है। विडम्बना है कि मानवजातिके लिये जीवनस्वरूपा गो और अत्यन्त उपकारी गोवंश लगातार घटता जा रहा है। जिस देशमें परब्रह्म परमात्माने गोसेवाके लिये श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया हो, वहाँ प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें नृशंसतापूर्वक गो और गोवंशका वध होना दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?

अब प्रश्न उठता है कि—गोसेवा न होनेसे सुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? गोवंश आज व्यावहारिक उपयोगिताकी दृष्टिसे भौतिक तुलापर तोला जा रहा है, किंतु आजका भौतिक विज्ञान गोवंशकी उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमोत्कृष्ट उपयोगिताका पता नहीं लगा सकता, जिसे भारतीय शास्त्रकारोंने अपनी दिव्य दृष्टिसे पहले ही पता लगा लिया था। पहले प्रत्येक घरमें सदस्योंके भोजन करनेसे पूर्व गोग्रास निकाला जाता था, गोग्रासदानका अनन्त फल है, परंतु दुःखकी बात है कि बदरीनाथ, केदारनाथधाम-जैसे पुण्य तीर्थमें गायें ही नहीं हैं। ऐसेमें वहाँ गोग्रासदानका सौभाग्य कहाँ? वहाँ गोदुग्धके स्थानपर पाउडर दूधका प्रयोग होता है।

ऋग्वेद (१।७।३)-में गौओंको चरनेके लिये पहाड़ोंपर भेजनेका निर्देश किया गया है—'**इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥**'

अर्थात् इन्द्रने 'दूरसे प्रकाश दीख पड़े—इसलिये सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया और स्वयं गौओंके साथ पहाड़की ओर विशेष रूपसे प्रस्थान किया।'

पर्वत गोचरभूमि है। पर्वत गायोंका संरक्षण करनेवाला है, इसीलिये पर्वतको गोत्र (गायोंको त्राण देनेवाला) कहा गया है। जब पर्वत गौओंका संरक्षण करेगा तब साथ ही साथ जन-समुदायका संरक्षण होना स्वाभाविक है, परंतु यह उत्तराखण्डका दुर्भाग्य रहा जो वहाँ गो (गाय) नहीं थी, नहीं तो आज यह सर्वनाश न होता।

गौओंके कारण नदियोंका महत्त्व बढ़ जाता है। ऋग्वेद (१।२३।१८)-में उन नदियोंकी स्तुति की गयी है, जहाँ वैदिक कालकी गौएँ जल पीती थीं—'**अपो देवी रुपह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥**'

अर्थात् हमारी गौएँ जहाँका जल पीती हैं, उन दिव्य गुणयुक्त जल-स्थानोंसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे समीप आ जायँ। उन नदियोंको मैं हविर्भाग देता हूँ।

गो जहाँका पानी पीती है, वहाँ दिव्य जल प्रवाहित होता है। गंगा आदि पवित्र नदियाँ गो-स्वरूपा ही हैं। गौओंके सिरपर ब्रह्माजीका निवास है, स्कन्धदेशपर भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। पृष्ठभागपर भगवान् नारायण स्थित रहते हैं। चारों वेद गोके चारों चरणोंमें निवास करते हैं। शेष अन्य सभी देवगण गौओंके रोमसमूहमें स्थित रहते हैं। इसलिये गोमाता सर्वदेवमयी हैं। ऐसी इन गौओंकी सेवा-भक्तिसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। गोको स्पर्श करनेसे सारे पापोंका हरण हो जाता है। जिस दिन विश्वमें गो नहीं रहेगी, उस दिन विश्व मातृशक्तिसे विहीन हो जायगा और उस दशामें कोई भी प्राणी नहीं बचेगा। इस प्रकार गोविहीन उत्तराखण्डमें तबाही होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतासे साँस लेता है, वह स्थान पवित्र हो जाता है। वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है और वह स्थान चमक उठता है।

लघुकथा—

आचार्यश्री सत्य कहते थे

[को न कुसंगति पाइ नसाई]

(श्रीसुभाषजी खन्ना)

वेदमन्त्रोंके सस्वर पाठसे प्रातः ब्राह्म-मुहूर्तकी वेलामें आश्रमका वातावरण गुंजायमान हो रहा था। आचार्यश्री अत्यन्त प्रसन्न थे। प्रसन्न क्यों न होते, उनका प्रिय शिष्य श्रीमुख जो आज पाठन करवा रहा था। आचार्यश्री शीघ्रातिशीघ्र अपने प्रिय शिष्यको समस्त विद्याओंमें पारंगत कर देना चाहते थे। संसारमें केवल पिता और गुरु ही अपने पुत्र या शिष्यको अपनेसे आगे निकलता देखकर प्रसन्न होते हैं। गुरु या पिताका सदैव यह प्रयास रहता है कि मेरा बालक और अधिक तरक्की करे और संसारमें उसका नाम हो, लोग कहें कि देखो आचार्यश्रीका शिष्य उनसे भी अधिक स्पष्ट और सुन्दर उच्चारण कर रहा है, यही उनकी गुरुदक्षिणा या उनका पारितोषिक होता है।

आज आश्रमको सजाया जा रहा है, भण्डारेमें भी विशेष व्यंजन बन रहे हैं, आश्रममें चहल-पहल है। आज मन्त्रीजीका पुत्र रोहित आश्रममें दीक्षा लेने आ रहा है, साथमें राज्यके सब बड़े अधिकारी भी आज आश्रममें प्रसाद ग्रहण करेंगे, उत्सवका माहौल है।

अरे श्रीमुख! तुम तो आचार्यश्रीसे भी अधिक शुद्ध उच्चारण करते हो, तुम्हारा कक्षाका संचालन भी बहुत उत्तम है—रोहित श्रीमुखसे कह रहा था। दोनों मित्र जो हो गये थे। रोहित अक्सर श्रीमुखको अपने घरसे आये उपहार देने लगा था। धीरे-धीरे श्रीमुख रोहितके प्रभावमें आने लगा। इससे अब उसका पढ़ाईमें मन कम लगने लगा। उसका ऐसा व्यवहार देखकर आचार्यश्रीको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने श्रीमुखको कई बार समझानेकी कोशिश की, किंतु कुसंगका उसपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह अपने पथसे विचलित होने लगा। ऐसे ही कुछ दिन व्यतीत हो गये। आचार्यने पुनः श्रीमुखसे कहा—'श्रीमुख! इधर मैं देख रहा हूँ तुम्हारा मन पढ़नेमें नहीं है, तुम शान-शौकीनीमें ही समय बरबाद कर रहे हो, मेरी बात मानो अपने अध्ययनमें ध्यान दो।' उन्हें लग रहा था कि उनका प्रिय शिष्य अब कुसंगतिमें फँसता जा रहा है। उन्होंने उसे समझानेका प्रयास किया, परंतु उसे उसने गुरुजीकी कुण्ठा समझा। वह अपने मित्रोंके साथ समय अधिक देने लगा। अवकाशके दिन तो वह रोहित तथा उसकी मित्र-मण्डलीके साथ आश्रमके बाहर ही रहता। नियम-उपनियम सब धीरे-धीरे शिथिल हो रहे थे। रोहित अक्सर श्रीमुखसे कहता—देखो, गुरुजी तुम्हारा अध्ययन और कक्षसंचालन देखकर जलने लगे हैं। आचार्यश्री जो कभी श्रीमुखके पूज्य हुआ करते थे, आज वह उन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी (कम्पटीटर) समझने लगा। उसे अपने आचार्यकी प्रत्येक बातमें उनका अभिमान नजर आने लगा।

अक्सर वह कभी आचार्यश्रीपर कटाक्ष भी कर देता, जो आचार्यजीको अन्दरतक घायल कर देता। अपने प्रिय शिष्यका आचरण, उसका व्यवहार देखकर वे सदैव प्रभुसे उसकी सद्बुद्धिके लिये प्रार्थना करते; क्योंकि उनकी चिन्ताको, जो कि उसके भविष्यको लेकर थी, उसे वह उनका दर्प समझ रहा था।

प्रिय वत्स, जीवनमें यदि अनुशासन न हो तो वह अनियमित हो जाता है, उस नदीकी तरह हो जाता है जिसका कोई तट न हो, इसलिये कुसंगतिसे बचो और अपने भविष्यपर अधिक ध्यान दो। व्यक्ति यदि दूधकी दूकानसे शराब पीकर निकलता है तो उसपर किसीकी दृष्टि नहीं जाती, परंतु शराबकी दुकानसे दूध पीकर निकलनेवालेको शराबी ही समझते हैं। इसे भी श्रीमुखने उनकी पराजय समझा कि वे अपने अभिमानके रक्षणको इस प्रकार कह रहे हैं।

रोहितके परामर्शसे श्रीमुख और अधिक व्यसनोंमें फँसता चला जा रहा था। धीरे-धीरे आचार्यश्री उदासीन हो गये और आश्रमकी बागडोर श्रीमुखके पास आने लगी। धीरे-धीरे विद्यार्थी कम होने लगे और समयके अन्तरालपर आश्रम बन्द हो गया और श्रीमुख पूर्णरूपेण रोहितके आश्रयमें आ गया। धीरे-धीरे रोहितका व्यवहार बदलने लगा, उसने एक दिन श्रीमुखसे कहा—भाई! हमारे परिवारवाले कहते हैं कि तुम्हें कुछ तो करना ही चाहिये।

अरे मरदूद! कहाँ मर गया तू, जरा-सा काम भी तेरेसे नहीं होता। ढंगसे बर्तन भी नहीं धो सकता। रोहितकी धर्मपत्नी चिल्ला रही थी श्रीमुखपर। वह श्रीमुख जो कभी वेदपाठी था, वह श्रीमुख जो सबका प्रिय था, जो भी उसके मुखमण्डलको देखता था, उसके आभामण्डलसे आकर्षित हुए बिना न रहता; किंतु आज वही श्रीमुख कान्तिहीन, श्रीविहीन निःसहाय पड़ा सोच रहा था—आचार्यश्री सत्य कहते थे।

संत उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव!

सत्यकी लालसा किसी अभ्याससे जाग्रत् नहीं होती। वह तो पानेका लालच और करनेकी रुचिका त्याग तथा गलत करना छोड़नेसे अपने-आप जाग्रत् होती है। इसपर यदि कोई कहे कि ये सब कैसे छूटें? तो कहना होगा कि पहले हमें पानेका लालच छोड़ना होगा। फिर करनेकी रुचि और गलत करना अपने-आप छूट जायगा, कारण, जो कुछ भी नहीं चाहता वह गलत किसलिये करेगा? और जो गलत नहीं करेगा, उसका करनेका राग भी मिट जायगा और उसको विश्राम भी मिलेगा। फिर सत्यकी लालसा जाग्रत् होगी।

सही करनेसे विद्यमान रागकी निवृत्ति हो जाती है और पानेके लालच तथा करनेकी रुचिके त्यागकी योग्यता भी आ जाती है। जबतक हम गलत करते रहेंगे, तबतक न तो हमारा राग ही मिटेगा और न हम करने-पानेके चक्रसे मुक्त होंगे। इसलिये पहले सही करना सीखो और उसका भी फल मत चाहो। चाह-रहित होनेपर मनुष्यको योगकी सिद्धि मिलती है; यानी शान्तिकी प्राप्ति होती है।

ममता, कामना और तादात्म्यके त्यागका नाम ही संन्यास है। कपड़े रँगना और किसी सम्प्रदाय-विशेषमें दीक्षा लेना तो संन्यासका बाहरी चिह्न है। केवल बाह्य-चिह्न धारण करनेसे किसीकी मुक्ति नहीं होती।

करना-पाना छोड़नेपर ही बोधका उदय एवं मुक्तिकी प्राप्ति होती है; और प्रभुको अपना मानकर उनके शरणागत होनेसे प्रेमकी प्राप्ति होती है। सही करना, कुछ न चाहना और प्रभुके शरणागत होना—यह योग, बोध प्रेमकी तैयारी है और इसीसे योग-बोध, प्रेमकी प्राप्ति होती है।

जगत्से सम्बन्ध टूटकर उस अनन्तके साथ अहंका सम्बन्ध जुड़ जानेका नाम ही योग है। इसीसे सब संकल्पोंकी निवृत्ति होती है और उस अनन्तको सब जगह सबमें देखना ही बोध है। योगसे दोष और कामनाओंका त्याग होता है और उस अनन्तको अपना मानना एवं अहंको उनके समर्पित करना ही प्रेम है, यानी प्रेमकी प्राप्ति होती है। केवल गृहत्याग करने एवं वस्त्र रँगनेमात्रसे किसीको योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह त्याग नहीं वरन् त्यागके भेषमें अपने कर्तव्यसे पलायन करना है। जैसा कि 'रामायण' में गोस्वामी तुलसीदासने लिखा है—

नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥

कई भाई सती-साध्वी पत्नी और छोटे-छोटे अबोध बालकोंको निराश्रित छोड़कर घर-बारका त्याग कर जाते हैं। पूछनेपर कहते हैं, उनका पालन तथा रक्षण भगवान् करेंगे।

एक दृष्टिसे तो बात ठीक है कि सब जीवोंका पालन और रक्षण तो भगवान् ही करते हैं; परंतु तुम तो अपने कर्तव्यसे च्युत हो गये। तुम्हारे ऊपर आश्रित उन प्राणियोंके प्रति भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य था—इस बातका तुमने विचार नहीं किया।

यदि यही बात थी तो घर क्यों बसाया था? यदि तुम उनकी ममताको त्यागकर घरमें ही साथ रहते, उनको सदाचार और ईमानदार बनाते, उनको सही करना सिखाते। रक्षा तो तब भी उनकी भगवान् ही करते और तुम्हारा कर्तव्य भी पूरा हो जाता। जब वह समर्थ हो जाते, तब उनसे अलग रहकर अपना भजन करते। तुमने तो भगवान्पर विश्वास किया, उनको साथ रखना झंझट समझकर अपने आरामसे सुखपूर्वक रहनेके लिये उनको छोड़ दिया। किंतु अपने आराम और सुखको न छोड़ा। अब जब भजनमें मन नहीं लगता तो कहते हैं, क्या बतायें, हमने तो सब कुछका त्याग कर दिया, परंतु सच्ची शान्ति नहीं मिली।

भावनाओंपर नियन्त्रण

(श्रीइन्द्रदेवजी सक्सेना)

प्रत्येक मनुष्य भावनाओंका समुच्चय होता है। उसमें सद्भावनाएँ भी होती हैं और दुर्भावनाएँ भी, इन्हीं भावनाओंके द्वारा मनुष्यका जीवन उच्च या निम्न कोटिका बनता है। सद्भावनाएँ जहाँ व्यक्तिको जीवनकी ऊँचाइयोंकी ओर ले जाती हैं, वहीं दुर्भावनाएँ उसे पतनके गर्तकी ओर। इन्हीं सद्भावनाओं और दुर्भावनाओंको गीताके सोलहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद्के नामसे वर्णित किया है। उन्होंने अभय, सत्त्वसंशुद्धि (अन्तःकरणकी सम्यक् शुद्धि), परमात्माके स्वरूपमें निरन्तर स्थित रहना, सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान् और गुरुजनोंकी पूजा, स्वाध्याय, तप, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अलोलुपता, वाणी और व्यवहारमें मृदुता, क्षमा, धैर्य, किसीसे शत्रुभाव न रखना तथा अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव आदिको दैवी-सम्पदायुक्त पुरुषके लक्षण कहा है। साथ ही दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञानको उन्होंने आसुरी-सम्पदासे युक्त पुरुषके लक्षण कहा है।

दैवी-सम्पदा अर्थात् सद्भावना मनुष्यको संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली और आसुरी-सम्पदा अर्थात् दुर्भावना संसार-बन्धनमें फँसानेवाली होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम अपनी दुर्भावनाओंको अपने ऊपर हावी होने देते हैं? इस प्रश्नका जिस रूपमें उत्तर देंगे, उसका बड़ा प्रभाव हमारी सफलता-असफलतापर पड़ेगा। यह बात सोलह आने सही है कि क्रोध पतनका मार्ग प्रशस्त करता है। यही बात काम और लोभके लिये भी सत्य है। वास्तवमें काम, क्रोध तथा लोभकी भावना तो आत्माका नाश करनेवाली ही है।

जीवनसे अधिकतम लाभ उठानेके लिये आवश्यक है कि ऐसी आदतों और आचार-व्यवहारोंका हम परित्याग कर दें, जो हमें नीचे खींच रही हैं।

शिकायतों और पुराने मनोमालिन्यका पोषणकर प्रसन्न नहीं रहा जा सकता। ऐसी स्थितिमें आइजन हावरका कथन है कि 'जो व्यक्ति मुझे अप्रिय लगते हैं, उनके बारेमें विचार करनेमें मैं समय नष्ट नहीं करता। यदि किसीने हानि पहुँचायी है तो उसे भूलनेका प्रयास करे। उसपर विचार करते रहनेसे मनोमालिन्य और कुढ़न बढ़ेगी।'

लोभ एवं रागका त्यागकर संयमित जीवन जीनेकी तथा न्यायोपार्जित द्रव्यकी सन्त-महात्मा और सद्ग्रन्थ प्रशंसा करते हैं। लोभकी कभी पूर्ति हो नहीं सकती, वह वैसे ही बढ़ता रहता है, जैसे घीकी आहुति देनेसे अग्निकी ज्वाला। अतः लोभकी भावना पतनकी ओर ही ले जानेवाली है। कामको पुरुषार्थ-चतुष्टयमें स्थान प्राप्त है, परंतु वही काम प्रशस्त माना गया है, जो धर्मनियन्त्रित हो। काम-भावनाओंका उच्छृंखल स्वरूप अधोगतिका द्वार है। अतः मनुष्यको काम, क्रोध, लोभ, द्वेष आदि दुर्भावनाओंका सर्वथा परित्यागकर अपने मनको सद्विचारोंसे संवलित करना चाहिये। सद्भावनाओंका आश्रय लेना चाहिये और निश्चिन्त होकर अपने सत्-पथपर बढ़ते रहना चाहिये, चिन्ताएँ हमें समाप्त करें, उससे पूर्व हम उन्हें समाप्त कर डालें। चिन्ता किसी समस्याका हल नहीं कर सकती। यदि आपके सम्मुख कोई समस्या है तो उसे हल करनेके सम्बन्धमें आपसे जो हो सके करें और उस समस्याको ही मनसे निकाल दें। आदमी अनेक ऐसी स्थितियोंके प्रति चिन्तातुर होता है, जो जीवनमें कभी घटती ही नहीं हैं। जीवनमें निराशासे मुक्त रहनेका प्रयास करें। सकारात्मक और सुखद विचारोंको मनमें स्थान दें। विनोदप्रियता आपमें है, तो आप लम्बे समयतक मुर्दामन नहीं रह सकते हैं। अपनेको सम्भावनाओंके अनुरूप स्वीकार करें और अपनेमें आत्मविश्वास पैदा करें।

वर्तमानकी अवहेलनाकर कोई व्यक्ति सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। यह सार्वभौम रूपसे सत्य है कि भावनात्मक रूपसे मनुष्य प्रसन्नताका आकांक्षी होता है। अतः यदि आप उपर्युक्त प्रकारसे आचरण करें तो निश्चित रूपसे अपनी भावनाओंको नियन्त्रणमें रखकर अपने जीवनको सुखमय बनानेमें सफल रहेंगे, संत-महात्माओंके उपदेश और सद्ग्रन्थोंका अध्ययन इसमें सहायक हो सकता है।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, शुद्ध आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।५५ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा रात्रिमें ८।९ बजेतक	३ जून	धनुराशि रात्रिमें ८।९ बजेतक।
द्वितीया " ८।१ बजेतक	गुरु	मूल " ८।२ बजेतक	४ "	मूल रात्रिमें ८।२ बजेतक।
तृतीया सायं ६।४४ बजेतक	शुक्र	पू० षा० " ७।२७ बजेतक	५ "	भद्रा दिनमें ७।२२ बजेसे सायं ६।४४ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें १।१४ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।९ बजे।
चतुर्थी दिनमें ५।४ बजेतक	शनि	उ० षा० सायं ६।३५ बजेतक	६ "	× × ×
पंचमी " ३।४ बजेतक	रवि	श्रवण " ५।२२ बजेतक	७ "	कुम्भराशि रात्रिशेष ४।४० बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ४।४० बजे।
षष्ठी " १२।५१ बजेतक	सोम	धनिष्ठा दिनमें ३।५६ बजेतक	८ "	भद्रा दिनमें १२।५१ बजेसे रात्रिमें ११।४० बजेतक, मृगशिराका सूर्य रात्रिमें ११।२२ बजे।
सप्तमी " १०।२८ बजेतक	मंगल	शतभिषा " २।२० बजेतक	९ "	कालाष्टमी।
अष्टमी " ८।१ बजेतक	बुध	पू० भा० " १२।४० बजेतक	१० "	मीनराशि दिनमें ७।५ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमी।
नवमी प्रातः ५।३२ बजेतक दशमी रात्रिमें ३।८ बजेतक	गुरु	उ० भा० ११।१ बजेतक	११ "	भद्रा दिनमें ४।२० बजेसे रात्रिमें ३।८ बजेतक, मूल दिनमें ११।१ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें १२।५३ बजेतक	शुक्र	रेवती " ९।२७ बजेतक	१२ "	मेषराशि दिनमें ९।२७ बजेसे, योगिनी एकादशीव्रत (सबका), पंचक समाप्त दिनमें ९।२७ बजे।
द्वादशी " १०।५१ बजेतक	शनि	अश्विनी " ८।४ बजेतक	१३ "	मूल दिनमें ८।४ बजेतक।
त्रयोदशी " ९।९ बजेतक	रवि	भरणी प्रातः ६।५६ बजेतक	१४ "	भद्रा रात्रिमें ९।९ बजेसे, वृषराशि दिनमें १२।४५ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " ७।४९ बजेतक	सोम	कृत्तिका " ६।१० बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ८।२९ बजेतक, मिथुन संक्रान्ति रात्रिमें ११।३७ बजे।
अमावस्या सायं ६।५४ बजेतक	मंगल	रोहणी " ५।४४ बजेतक	१६ "	मिथुनराशि सायं ५।४५ बजेसे, भौमवती अमावस्या।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, अधिक आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६।२८ बजेतक	बुध	मृगशिरा प्रातः ५।४७ बजेतक	१७ जून	अधिकमास प्रारम्भ।
द्वितीया " ६।३३ बजेतक	गुरु	आर्द्रा " ६।१८ बजेतक	१८ "	कर्कराशि रात्रिमें १।५ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें ७।१० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु दिनमें ७।२० बजेतक	१९ "	× × ×
चतुर्थी " ८।१३ बजेतक	शनि	पुष्य " ८।५२ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें ७।४२ बजेसे रात्रिमें ८।१३ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल दिनमे ८।५२ बजेसे।
पंचमी " ९।४४ बजेतक	रवि	आश्लेषा " १०।५१ बजेतक	२१ "	सिंहराशि दिनमें १०।५१ बजेसे।
षष्ठी " ११।३३ बजेतक	सोम	मघा " १।९ बजेतक	२२ "	आर्द्राका सूर्य रात्रिमें १२।९ बजे, सायन कर्कका सूर्य प्रातः ५।५१ बजे, मूल दिनमें १।९ बजेतक।
सप्तमी " १।३३ बजेतक	मंगल	पू० फा० " ३।४२ बजेतक	२३ "	भद्रा रात्रिमें १।३३ बजेसे, कन्याराशि रात्रिमें १०।२२ बजेसे।
अष्टमी " ३।३४ बजेतक	बुध	उ० फा० सायं ६।२० बजेतक	२४ "	भद्रा दिनमें २।३३ बजेतक।
नवमी अहोरात्र	गुरु	हस्त रात्रिमें ८।५२ बजेतक	२५ "	× × ×
नवमी प्रातः ५।२५ बजेतक	शुक्र	चित्रा " ११।९ बजेतक	२६ "	तुलाराशि दिनमें १०।० बजेसे।
दशमी " ६।५९ बजेतक	शनि	स्वाती " १।३ बजेतक	२७ "	भद्रा रात्रिमें ७।३२ बजेसे।
एकादशी दिनमें ८।५ बजेतक	रवि	विशाखा " २।३३ बजेतक	२८ "	भद्रा दिनमें ८।५ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें ८।१० बजेसे, पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " ८।४८ बजेतक	सोम	अनुराधा " ३।३१ बजेतक	२९ "	सोमप्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें ३।३१ बजेसे।
त्रयोदशी " ८।५७ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा " ३।५९ बजेतक	३० "	धनुराशि रात्रिमें ३।५९ बजेसे।
चतुर्दशी " ८।३४ बजेतक	बुध	मूल " ३।५८ बजेतक	१ जुलाई	भद्रा दिनमें ८।३४ बजेसे रात्रिमें ८।९ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा, मूल रात्रिमें ३।३८ बजेतक।
पूर्णिमा " ७।४३ बजेतक	गुरु	पू० षा० " ३।३० बजेतक	२ "	पूर्णिमा।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

रामसे ममता, संसारमें समता

प्रिय भैया! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। मनुष्य जानता बहुत है, जानना चाहता बहुत है; पर करना बहुत कम चाहता है; इसीलिये जानी हुई और जाननेयोग्य बातोंसे उसे विशेष लाभ नहीं होता। बहुत अधिक बातें जाननेसे बातें याद भी नहीं रहतीं। तुमने अपने लम्बे पत्रमें जो बातें पूछी हैं, उन सबका यह बहुत थोड़ेमें ही उत्तर है कि तुम्हें जो कुछ प्राप्त है, वह न तुम्हारा है और न तुम्हारे लिये है, इस बातका निश्चय कर लो। जो कुछ मिला है, उसे प्रभुके लिये समझो। धन, जन, सेवा, मान, बुद्धि, विद्या, इन्द्रिय इत्यादि सबकुछ उनकी चीज मानकर ईमानदारी और सच्चाईके साथ बिना अभिमान, नम्रताके साथ उनके आज्ञानुसार उन्हींको अर्पण करते रहो। यह अपना सौभाग्य समझो कि भगवान्ने इसमें तुमको निमित्त बनाया। भगवान्को देनेके लिये अमुक परिमाणमें कोई वस्तु हो—यह बात नहीं है। किसीके पास धन नहीं होगा तो वह उसे कैसे देगा! किसीके पास विद्या नहीं है तो वह विद्या कहाँसे देगा! जो कुछ है उसमेंसे अपनेपनको उठा लेना और उनका मान लेना—यही देना है। इसके बाद न उसे रखनेका लोभ होगा और न देनेका अभिमान। जगत्‌में सबसे बड़ा बन्धन 'ममता' है। इसीसे पापोंकी उत्पत्ति होती है और ममतासे ही दुःख होते हैं। कितने लोग रोज मरते हैं और कितनोंका दिवाला निकलता है—हम कहाँ दुखी होते हैं! जहाँ ममता है, वहीं दुःख है। ममता ऐसी वस्तुसे करनी चाहिये, जो अपनी है, सदा रहनेवाली है तथा किसी भी देश-काल-योनियोंमें जो अपनेसे अलग नहीं होती। वह वस्तु है—श्रीभगवान्! जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, होने दिया जाय; उसके परिवर्तन करनेका या बदलनेका मनोरथ न उठे। यहाँपर जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हानि-लाभ होता ही रहेगा। यह संसारका स्वरूप है। संसार रहता है द्वन्द्वके स्वरूपमें। बस, भगवान्से तो केवल यह माँग की जाय कि जो होना है, सो होने दो। उसे कभी भी बदलनेकी आवश्यकता नहीं। बस, केवल तुम्हारा चिन्तन बना रहे। गोस्वामीजीका एक दोहा याद रखना—

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष, न दोष दुःख, दास भये भव पार॥

(२)

रास्तेमें न भटकें, न अटकें

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमें चाहिये कि हम अपनेको यहाँके मालिक तो समझें ही नहीं, यात्री समझें। हमारी महायात्रा चल रही है और जबतक हम अपने घर—श्रीभगवान्के चरण-प्रान्तमें नहीं पहुँच जायँगे, तबतक यह यात्रा चलती ही रहेगी। दुःख तो इस बातका है कि हम भूलकर भटक जाते हैं एवं रास्तेमें ही कहीं ममता-आसक्ति करके तथा कहीं लड़-झगड़कर मुकदमेमें फँसकर अटक जाते हैं। हमारी यात्रा ठीक सीधे रास्ते—लक्ष्यकी ओर चलती ही नहीं। इसीसे एकके बाद दूसरा दुःख आता रहता है; क्योंकि ये राग-द्वेष सदा नये-नये बन्धनों तथा भयोंको उत्पन्न करते रहते हैं। अतएव बुद्धिमानी इसीमें है कि हम अपने लक्ष्यको ध्यानमें रखें, यहाँके घरको घर न समझें—मुसाफिरखाना समझें, कहीं आसक्ति—ममता न करें और न किसी से लड़ें-झगड़ें। भगवान्की ओर मुख किये सीधे चुपचाप चलें और रास्ता तय करें। लक्ष्यपर दृष्टि रखें; इधर-उधर न भटकना, न कहीं अटकना। भगवद्विश्वास होगा, तो हमारा रास्ता शीघ्र समाप्त हो जायगा, हम शीघ्र भगवद्धाममें पहुँच जायँगे। शेष भगवत्कृपा।

(३)

माता-पिताके आज्ञानुसार करना चाहिये

प्रिय बहन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप भगवान्‌के नामकी पचीस मालाएँ सुबह, पचीस मालाएँ शामको जप करती हैं, कुछ ध्यान-सेवा आदि भी करती हैं, खान-पान, घूमने-फिरनेका आपका कोई भी व्यसन या शौक नहीं है, न धनका ही प्रलोभन है—ये सभी बातें बहुत अच्छी हैं। आपके माता-पिता खूब भजन करते हैं, घर भी अच्छा है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है—यह सब भगवत्कृपाका ही फल है। ऐसे भक्त माता-पिता आपके लिये जो सोचेंगे—सब ठीक सोचेंगे। वे आपके स्वास्थ्यकी हालत भी जानते हैं तथा आपकी भजनमें प्रवृत्ति है, इससे भी परिचित हैं। उनसे बढ़कर आपका हितैषी कौन होगा! आपके सम्बन्धमें वे सोच-विचारकर जो निश्चय करें, आपको वही करना चाहिये।

सदा-सर्वदा भगवान्‌को अपना समझिये। सचमुच वे हमारे अपने-से-अपने हैं। उनकी कृपापर विश्वास कीजिये। उनके मंगलमय विधानसे सब मंगल ही होगा। शेष प्रभुकृपा।

(४)

भगवान्‌के अवतार

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि सचमुच भगवान्‌का कहीं अवतार हो गया हो या होनेवाला हो तथा शीघ्र ही विश्वमें अधर्मका नाश एवं धर्मका संस्थापन होनेवाला हो तो इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या हो सकती है? पर जहाँतक हमलोगोंकी बुद्धि काम देती है, जहाँतक शास्त्रोंके वचन मिलते हैं, यह कहा जा सकता है कि अभी वस्तुतः सच्चिदानन्दघन भगवान्‌का अवतार कहीं नहीं हुआ है। यों तो हमारे पास ऐसे बहुत-से पत्र आये हैं—आते हैं, जिनमें साक्षात् परब्रह्म, भगवान् विष्णु, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम (चारो बन्धु), भगवान् शंकर, भगवती दुर्गा आदिके अवतारोंका उल्लेख रहता है। इन सबके एक-एकसे कई जगह कई अवतार होनेकी बात लिखी रहती है और प्रायः सभी उनके पूर्णावतारका दावा करते हैं। बात ठीक समझमें नहीं आती—एक ही विष्णुभगवान्‌के, एक ही श्रीकृष्ण या श्रीरामके अलग-अलग कई जगह अवतार कैसे हो गये? भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं; वे सब कुछ कर सकते हैं, पर जबतक बात समझमें न आ जाय, तबतक कुछ भी कहते नहीं बनता। हाँ, इतनी बात अवश्य कही जा सकती है कि जहाँ भगवान् या अवतारके नामपर अपनी पूजा-प्रतिष्ठा करानेका प्रयत्न है, धन-सम्मानकी माँग है, वहाँ अवश्य सावधान हो जाना चाहिये। यों तो भगवान्‌का कभी कहीं न अभाव है, न हो सकता है। जीवमात्रके रूपमें भगवान् ही अवतरित और अभिव्यक्त हैं। अतः सदा-सर्वत्र भगवान्‌को मानकर शास्त्रके आज्ञानुसार भगवान्‌का भजन-पूजन-ध्यान-सेवन अवश्य करना चाहिये। किसीका भी विरोध नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त उचित बात सभीकी अच्छी है, अशास्त्रीय यथेच्छाचार तथा केवल भोगलिप्साकी बात सदा ही बुरी है और त्याज्य है। शेष भगवत्कृपा।

(५)

धर्मपत्नीके साथ सद्व्यवहार

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। सुनी हुई बात तो दूर, आँखसे देखनेपर भी उसका पूरा पता लगाये बिना किसीको दोषी मान लेना अनुचित है। फिर जब आपकी धर्मपत्नी अपनेको सर्वथा निर्दोष बतला रही है, तब तो उन्हें दोषी मानकर त्याग करनेका विचार भी करना बड़ा पाप है। आप ऐसा पाप कभी न करें। उन्हें सद्भाव दें, स्नेह दें, आदर दें और अपने सद्व्यवहारसे सुखी रखें—ईश्वर आपका भला करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

कृपानुभूति

भगवत्कृपासे अर्थाभावमें भी ऑपरेशन हुआ

ग्वालियर (म०प्र०)-के करीब एक छोटा-सा कस्बा है बामोर, वहीं मेरा जन्म हुआ था। बचपनसे ही रामायण और कल्याण—ये दोनों पुस्तकें पढ़नेका अच्छा वातावरण वहाँ मिला। आये दिन कॉलोनीमें किसी-न-किसीके यहाँ अखण्ड रामायणका पाठ हुआ करता था, हम घरके सभी सदस्य अक्सर वहाँ जाया करते थे। इस कारण मेरी रामायण ग्रन्थ और श्रीरामजीके ऊपर बड़ी श्रद्धा है। हमारे घर मासिक कल्याण आता था, जिसे हम पढ़ते थे, उसमें आखिरके तीन-चार पेजपर भक्तोंके अनुभव दिये जाते थे, वह कालम मैं अक्सर पढ़ता था, उसी तरहका एक किस्सा मेरे साथ भी हुआ, जिसका मैं यहाँ जिक्र कर रहा हूँ—

मैं गुजरातके राजकोट शहरमें एक प्राइवेट कम्पनीमें नौकरी कर रहा था, किन्हीं कारणोंवश वह कम्पनी बन्द होने जा रही है—ऐसा समाचार मिला। उन दिनों मेरी तबियत ठीक नहीं थी। उच्च रक्तचाप एवं मधुमेह मेरी बीमारी थी, सब कुछ नार्मल चल रहा था, एक दिन समाचार मिला कि ३० नवम्बर, सन् २०१२ ई० से कम्पनीका कामकाज बन्द हो जायगा। कम्पनीने छँटनी चालू कर दी, हमलोगोंका भी नम्बर आता, उसके पहले मुझे २९-३० दिसम्बरको जबरदस्त चक्कर आया। डॉक्टरको दिखाया, डॉक्टरने कहा कि Angiography (एंजियोग्रॉफी) करवानी पड़ेगी, हार्टकी Problem लगती है।

कम्पनीमें मेरा ESIC कटता था, उस वजहसे ESIC ने मुझे बड़े अच्छे हॉस्पिटलमें Refer किया। ईश्वरकी कृपासे ५ जनवरीको मेरा Engioplasty का ऑपरेशन हुआ, करीब २.२५ लाखका खर्चा था, पर मुझे एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ा; क्योंकि उस वक्ततक मैं ESIC में कवर था। २०-२५ दिनके बाद कम्पनी Join की। ५वें दिन यानी १ फरवरीसे मेरा हिसाब कर दिया गया और मैं घरपर बैठ गया। ३-४ महीने ही हुए थे कि मुझे फिरसे परेशानी होने लगी, मैं ४०-५० कदम भी नहीं चल सकता था, मुझे बहुत तनाव आ गया था, साधारण परिवारसे था। बड़ी मुश्किलसे घरका गुजारा चलता था, किसी प्रकारकी बचत होती नहीं थी। नौकरी चली गयी थी, इसलिये जो दूसरी नौकरी छोटी-मोटी लगी थी, उसमें ESIC का लाभ वगैरह कुछ था नहीं। इस कारण चिन्ता ज्यादा होने लगी थी कि अगर कुछ समस्या निकली तो फिर दो-ढाई लाख रुपये कहाँसे लायेंगे। रामजीको याद किया और डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने औपचारिक जाँचके बाद बताया कि अभी जो पहले Operation किया गया था, वह Success नहीं हुआ है। उन्होंने मुझे बताया कि अब आपकी Open Heart Surgery होगी। मैं डॉक्टर के सामने ही फफक-फफककर रो पड़ा; मैंने उनसे कहा कि मेरे पास तो फूटी-कौड़ी भी नहीं है। पहले तो ESIC की वजहसे Operation हो गया, अब क्या होगा? डॉक्टर ने मुझे धीरज दिया और बोले—'चिन्ता छोड़ो, कुछ प्रयत्न करते हैं। सब ठीक हो जायगा।' अगले दिन डॉक्टर ने मुझे जरूरी चेकअपके लिये बुलाया और Operation करनेके लिये भर्ती होनेको कहा और बताया कि आप निश्चिन्त रहें। आपको मामूली खर्च आयेगा, बाकी हमारी जिम्मेदारी रहेगी। ढाई लाखकी जगह मुझे मात्र २०००० रुपयेका खर्चा आया और मेरा पुनः ऑपरेशन हुआ। मैं कभी-कभी यह सोचता हूँ कि यह एक चमत्कार ही था, अगर २-३ दिन बाद यह सब कुछ होता तो शायद यह सब सम्भव नहीं होता; क्योंकि मैनेजमेंटने १ जनवरी, सन् २०१३ ई० से हमलोगोंको निकालनेकी तैयारी कर ली थी। २९-३० दिसम्बर, सन् २०१२ ई० को यह सब कुछ हुआ, इसलिये यह सब हो पाया। इस सबके लिये मैं ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद देता हूँ और अन्तमें यही कहता हूँ 'जिसका कोई नहीं उसका तो खुदा है यारो' रामजीने मेरी लाज रख ली, नहीं, तो कहींका नहीं रहता।

—चन्द्रशेखर व० केलकर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

करके तो देखें माता-पिता-प्रभुकी सेवा

सज्जनो! मेरा यह अनुभव है कि यदि सच्चे मनसे सन्तों-भगवद्भक्तोंमें श्रद्धा एवं सेवाभाव हो जाय तो जीवन-यापनमें आर्थिक बदहाली आड़े नहीं आती, ईश्वर किसी-न-किसी रूपमें उसे कदम-कदमपर सहारा देते हैं। इसी परिप्रेक्ष्यमें संक्षिप्तमें अपने जीवनकी यादें प्रकट करता हूँ—मेरा जन्म टिकरिया, जिला जबलपुर (म०प्र०)-में हुआ। घरके सामने शिवमन्दिर, कुआँ एवं बगीचा है। उन दिनों शिवमन्दिरके सामने आमकी शीतल छायामें सन्त-महात्माओंकी मण्डली आकर ठहरती थी। पाँच वर्षकी उम्रसे मैं उस सन्त-समागमके स्थान एवं वहाँ होनेवाली उनकी दिनचर्याके दर्शन करता था। रात्रिके समय संतजन अपने चिमटोंकी धुनपर बड़े ही भावविभोर होकर ईश-भजन गाया करते थे। मैं तब कुछ समझनेमें तो असमर्थ था, पर ऐसा लगता था कि मैं भी उनकी भक्तिरस-तरंगोंमें झूल रहा हूँ। उन्हीं दिनों चित्रकूटधामकी यात्रापर मैं अपने पिताके साथ गया। वहाँसे लौटनेपर मुझे रामायणके दोहा-चौपाइयाँ पढ़ने एवं गानेकी रुचि जागी। मैं बड़े चावसे रामायण पढ़ता, गाँवभरमें होनेवाले हर रामायण-कार्यक्रममें मुझे बुलाया जाता था। बड़े-बुर्जुग बड़े प्रेमसे मेरे रामायण-गायनको सुनते थे।

दस वर्षकी उम्रसे मैं अपने माता-पिताके साथ गृहकार्य एवं मजदूरीमें उनका हाथ बँटाने लगा। स्कूलके साथ छोटे भाइयोंकी सँभाल करता था। समयपर धान-गेहूँकी कटाईके साथ चावसे पढ़ाई भी करता था। घरकी तंगहालीके कारण मैट्रिकतक कठिनाईसे पहुँचा। मैंने पिताजीसे सुबह-शाम काम करके स्कूल जानेकी प्रार्थना की। मैट्रिक पास किया, मेरे अन्य भाई आगे नहीं पढ़ सके। मैं कॉलेजमें दाखिल हुआ, गुरुकृपासे मेरा जीवन आनन्दसे बीतता गया।

मैंने बचपनसे वही किया, जो माता-पिताको भाया। उन्होंने कहा—आज कुछ काम है, स्कूल मत जाओ तो नहीं गया। देखा पिता थके हैं तो उनके पैर दबाना, छोटे भाइयोंको देखना, गायोंका चारा लाना, चरनेके लिये छोड़ना, शामको माँके साथ बँधवाना, गेहूँ पिसाना आदि जो-जो वे कहते, करता था। ध्यान रखता कि ऐसा काम न हो जाय कि गाँवके लोग माता-पिताको उलाहना दें। माता-पिताकी सेवा कैसे की जाती है मैं नहीं जानता था, बस उनके मनकी करता था। फरवरी, सन् १९८० ई० में मेरी शादी हुई। मैं उस समय ऑडीटरके पदपर नौकरी कर रहा था।

ईश्वरकी कृपासे मुझे अति सुलक्षणा गृहकार्यमें दक्ष आज्ञाकारी पत्नी मिली। आधुनिक भौतिकवादी युगमें मैंने माता-पिताके साथ मिलकर घरको सँवारनेके जो कार्य किये, उसमें मेरी पत्नीका विशेष योगदान रहा, नहीं तो चाहकर भी अकेला अपने माता-पिता, भाई-बहनके लिये इतना इतनी सहजतासे मैं नहीं कर पाता।

बचपनसे ही मुझे जो भी पारिश्रमिक मिलता, सब माता-पिताको समर्पित करता था। स्कूल-कॉलेजमें मिलनेवाली छात्रवृत्ति या पुरस्कार भी उन्हींको देता, फिर जो वे कहते, वही होता। विवाहके बाद भी यह क्रम बना रहा। मैं मासिक वेतन माँके हाथमें सौंपता था। जब मैं पत्नीको लेकर जबलपुर रहने आया तो वेतनकी तारीखके एक दिन पहले या उसी दिन पिता या माताको बुला लेता था। वेतन लेकर ऑफिससे आकर पिताके हाथमें देता। उनके कहनेपर भगवान्के चरणोंमें रखता। दूसरे दिन गाँव लौटते समय पिताजी अपने हाथसे वेतनमेंसे हम दोनों एवं बच्चोंके मासिक खर्चके लिये रुपये देते, बाकी घरका खर्च चलानेहेतु गाँव ले जाते थे।

यह क्रम उनके रहनेतक चलता रहा। यह सब पत्नीके सामने होता था। उसने कभी इसमें न हस्तक्षेप किया, न ही विरोधी भाव प्रकट किये। पूज्य माता-पिता सन् १९९६-१९९८ ई० के अन्तरालमें परमधाम सिधार चुके हैं, लेकिन उन्हींके आशीर्वादसे आज मैं अपनी पत्नी एवं चार संतानों तथा नाती-पोतोंके साथ सानन्द जीवनयापन कर रहा हूँ। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि यह रामायण-पाठका सुफल तथा माता-पिता एवं गुरुका ही आशीर्वाद है, इसे आप सेवा या जो भी कहें।

—मथुराप्रसाद कोरी

(२)

शाप या वरदान

बात माह जुलाई, सन् २०१३ ई० की है, मैं झाँसीसे उरई बससे जा रहा था। बसमें बैठा एक व्यक्ति दाढ़ी रखाये हुए था। वह चिरगाँवसे बसमें बैठा, कण्डक्टरने उसका टिकट बनाया, उससे रुपये लिये, परंतु वापसके लिये फुटकर रुपये शायद नहीं थे, कण्डक्टरने दो रुपये टिकटके पीछे लिखकर टिकट सवारीको दिया और कहा—'जहाँ उतरना, वहाँ ले लेना।' ऐसी ही क्रिया वह अधिकतर सवारियोंके साथ कर रहा था। जब दाढ़ीवाला व्यक्ति सेमरी गाँवमें उतरा तो कण्डक्टरसे उसने दो रुपये माँगे तो कण्डक्टर बोला—तीन रुपये दो और पाँच रुपये लो। बूढ़ा बोला कि खुल्ले होते तो पहले ही दे देता। कण्डक्टर बोला तो फिर ले लेना और बस आगे बढ़ा दी। बूढ़ा बेचारा सिर्फ यह बोला—'तेरा भला नहीं होगा।' सेमरी एवं अमरा गाँवके बीच भी एक सवारीके साथ यही घटना हुई। मोंठ ग्रामके पहले ही मोटर ठेलेसे टकरा गयी, जिसमें सवारियोंको चोटें आयीं, कण्डक्टरको भी चोटें आयीं और दो रुपयेके बदले पाँच सौ रुपये कण्डक्टरके दवा, पट्टी आदिमें खर्च हो गये। गलत कार्यका ऐसा ही नतीजा होता है। लोग कहते हैं कि शाप अब नहीं लगता, पर अन्तर्वेदनासे दिया गया शाप लगता है एवं अन्तर्सुखसे दिया गया आशीर्वाद भी लगता है।—घनश्यामशरण श्रीवास्तव

(३)

हार्ट अटैकका उपचार

आधुनिक जीवन-शैली, भाग-दौड़ और मानसिक तनावके कारण हार्ट अटैक (हृदयाघात) आम होता जा रहा है। यह एक सद्यः प्राणघातक रोग है, इसमें रक्त धमनियोंमें ब्लॉकेज हो जाता है। ऐसेमें सहज सुलभ यह उपाय ९९ प्रतिशत ब्लॉकेजको भी रिमूव कर देता है। इसका मुख्य घटक है—पीपलका पत्ता। औषधि-निर्माण और प्रयोगविधि इस प्रकार है—

पीपलके १५ पत्ते लें, जो कोमल गुलाबी कोपलें न हों, बल्कि पत्ते हरे, कोमल एवं भली प्रकारसे विकसित हों। प्रत्येकका ऊपर एवं नीचेका कुछ भाग कैंचीसे काटकर अलग कर दें।

पत्तेका बीचका भाग पानीसे साफ कर लें। इन्हें एक गिलास पानीमें धीमी आँचपर पकने दें। जब पानी उबलकर एक तिहाई रह जाय, तब ठण्डा होनेपर साफ कपड़ेसे छान लें और उसे ठण्डे स्थानपर रख दें, दवा तैयार।

इस काढ़ेकी तीन खुराकें बनाकर प्रत्येक तीन घण्टे बाद प्रातः से लें। हार्ट अटैकके बाद कुछ समय हो जानेके पश्चात् लगातार पन्द्रह दिनतक इसे लेनेसे हृदय पुनः स्वस्थ हो जाता है और फिर दिलका दौरा पड़नेकी सम्भावना नहीं रहती। दिलके रोगी इस नुस्खेका एक बार प्रयोग अवश्य करें।

पीपलके पत्तेमें दिलको बल और शान्ति देनेकी अद्भुत क्षमता है।

इस पीपलके काढ़ेकी तीन खुराकें सुबह ८ बजे, फिर ११ बजे एवं २ बजे ली जा सकती हैं।

खुराक लेनेसे पहले पेट एकदम खाली नहीं होना चाहिये, बल्कि सुपाच्य एवं हल्का नाश्ता करनेके बाद ही लें।

प्रयोगकालमें तली चीजें, चावल आदि न लें। मांस, मछली, अण्डे, शराब, धूम्रपानका प्रयोग बन्द कर दें। नमक, चिकनाईका प्रयोग बन्द कर दें।

अनार, पपीता, आँवला, बथुआ, लहसुन, मेथी

दाना, सेबका मुरब्बा, मौसिमी, रातमें भिगोये काले चने, किसमिस, गुग्गुल, दही, छाछ आदि लें।

हार्ट अटैकको सर्वसुलभ औषधि होनेके नाते ही सम्भवतः भगवान्ने पीपलके पत्तोंको हार्टशेप बनाया है।—भगवानदास मन्त्री, मोबाइल : ०८८८९७७६६९९

(४)

बेसहारा गायोंका सहारा—मकसूद

हिन्दू धर्ममें जिसे माँका दर्जा मिला है, उसे दुतकारना एक मुसलिम युवकसे नहीं सहा गया। बेसहारा गायोंकी पीड़ाने उस युवकको गो-सेवक ही नहीं, ८० गायोंका संरक्षक भी बना दिया। आलम यह है कि जबतक वह गोशाला जाकर गायोंको नहीं देख ले, तबतक उसके मनको चैन नहीं मिलता है। गायोंकी यह सेवा इबादतकी शक्ल इख्तियार कर चुकी है मकसूद खानके लिये। जिला मुख्यालयके पास किरडोली गाँवके रहनेवाले मकसूदने दो साल पहले १५ लाख रुपये खर्चकर 'पीरबाबा रामदेव गोशाला' की स्थापना की। गोशालाका एक माहका खर्चा करीब २५ हजार रुपये भी मकसूद खान उठाते हैं। गायोंके प्रति उनकी सेवाकी ललकने समूचे क्षेत्रमें साम्प्रदायिक सौहार्दकी एक अनूठी मिसाल कायम की है।

किरडोली गाँव मुसलिमबहुल क्षेत्र है। गाँवकी आबादी करीब १२ हजार है। जिसमें सात हजारसे अधिक मुसलिम निवास करते हैं। मकसूद खान बताते हैं कि दो साल पहले बेसहारा गायोंको दुतकारने और डण्डा मारकर भगानेके दृश्यने उनके मनको बहुत कचोटा। इसके बाद बेसहारा गायोंका सहारा बननेका उन्होंने फैसला किया। गाँवकी सार्वजनिक भूमिपर गायोंकी छायाके लिये लम्बा-चौड़ा टीन शैड बनाया। पानी और चारा उत्पादनके लिये ट्यूबवेल लगाया। मकसूदके इस कार्यसे हिन्दू काफी प्रभावित हुए और कई लोग गोशालासे जुड़ भी गये। ये सभी निःस्वार्थ भावसे प्रतिदिन गायोंकी सेवामें समर्पित हैं।

गोशालामें ब्यानेवाली गाय और उसके बछड़ेको किसी गरीबको दे दिया जाता है। इसके लिये उससे ११०० रुपये लिये जाते हैं। गाय जबतक दूध देती है, गरीब व्यक्तिके पास रहती है और जब दूध देना बन्द कर देती है तो वह वापस गोशाला भेज दी जाती है। —गौरव जैन

[प्रेषक—सलीम खाँ फरीद]

(५)

पाशविकता

मैं प्रतिदिन सुबह घरके बगीचेमें आकर बैठ जाता था। वहीं एक बन्दर रहता था, जो नियमित रूपसे उसी समय प्रतिदिन आकर याचनापूर्वक दोनों हाथोंसे मानो निवेदन करता हुआ बिस्कुट माँगता था। मैं भी सहर्ष उसको बिस्कुट देकर प्रसन्नताका अनुभव करता था। वह शान्तिपूर्वक बिस्कुट खाकर चला जाता था।

एक दिन मैं बीमार हो गया, वह नियत समयपर आया, मैंने खिड़कीसे उसे बिस्कुट दे दिया, उसने उसे लेकर बिना खाये सम्हालकर खिड़कीके पास ही रख दिया। मैं तीन दिनतक बीमार रहा, वह प्रतिदिन दिनमें तीन-चार बार आकर खिड़कीसे मुझे देखकर वापस चला जाता था। मेरा स्वास्थ्य ठीक होनेपर मैं वापस बगीचेमें बैठने लगा, वह भी प्रसन्नचित्त होकर छुपाये हुए बिस्कुटोंको लाकर खाकर चला गया। मैं अपने प्रति उसकी संवेदना देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि जानवर भी कितने संवेदनशील होते हैं।

एक दिन वह रक्तरंजित अवस्थामें बड़ी मुश्किलसे लंगड़ाकर चलता हुआ मेरे पास आया और बेहोश होकर गिर पड़ा। किसीने उसपर पत्थरसे प्रहार किया था, जिससे वह बुरी तरह जख्मी हो गया था। हम उसे तुरंत अस्पताल ले गये। जहाँ डॉक्टरोंने उसे मृत घोषित कर दिया। मैं दुखी मनसे उसके बहते हुए रक्तमें मानवीय क्रूरताका अट्टहास महसूस कर रहा था एवं अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि देकर चुपचाप वापस घर आ गया।

आज भी जब वह घटना याद आ जाती है तो मैं द्रवित हो जाता हूँ और उस तथाकथित मनुष्यकी पाशविकताको नहीं भूल पाता हूँ।—राजेश माहेश्वरी

मनन करने योग्य

सेवासे शत्रुताकी समाप्ति

बहुत पहलेकी बात है, किसी नरेशके मनमें तीन प्रश्न आये—१. प्रत्येक कार्यके करनेका महत्त्वपूर्ण समय कौन-सा है? २. महत्त्वका काम कौन-सा है? ३. सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कौन है?

नरेशने अपने मन्त्रियोंसे पूछा, राजसभाके विद्वानोंसे पूछा; किंतु उन्हें किसीके उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। वे अन्तमें नगरके बाहर वनमें कुटिया बनाकर रहनेवाले एक संतके समीप गये। संत उस समय फावड़ा लेकर फूलोंकी क्यारीकी मिट्टी खोद रहे थे। राजाने साधुको प्रणाम करके अपने प्रश्न उन्हें सुनाये; परंतु साधुने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप अपने काममें लगे रहे।

राजाने सोचा कि साधु वृद्ध हैं, थक गये हैं, वे स्वस्थ चित्तसे बैठें तो मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे सकेंगे। यह विचार करके उन्होंने साधुके हाथसे फावड़ा ले लिया और स्वयं मिट्टी खोदने लगे। जब साधु फावड़ा देकर अलग बैठ गये, तब नरेशने उनसे अपने प्रश्नोंका उत्तर देनेकी प्रार्थना की। साधु बोले—'देखो, उधर दूरसे कोई व्यक्ति दौड़ता आ रहा है। पहले हमलोग देखें कि वह क्या चाहता है।'

सचमुच एक मनुष्य दौड़ता आ रहा था। वह अत्यन्त भयभीत लगता था। उसके शरीरपर शस्त्रोंके घाव थे और उनसे रक्त बह रहा था। समीप पहुँचनेसे पहले ही वह भूमिपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। साधुके साथ राजा भी दौड़कर उसके पास गये। जल लाकर उन्होंने उसके घाव धोये। अपनी पगड़ी फाड़कर उसके घावोंपर पट्टी बाँधी। इतनेमें उस व्यक्तिकी मूर्छा दूर हुई, राजाको अपनी सेवा-शुश्रूषामें लगे देखकर उसने उनके पैर पकड़ लिये और रोकर बोला—'मेरा अपराध क्षमा करें।'

नरेशने आश्चर्यपूर्वक कहा—'भाई! मैं तो तुम्हें पहचानतातक नहीं, फिर तुम किस बातके लिये क्षमा माँग रहे हो?'

उस व्यक्तिने बताया—'आपने मुझे कभी देखा नहीं है; किंतु एक युद्धमें मेरा भाई आपके हाथों मारा गया है। मैं तभीसे आपको मारकर भाईका बदला लेनेका अवसर ढूँढ़ रहा था। आज आपको वनकी ओर आते देखकर मैं छिपकर आपको मार डालने आया था, परंतु आपके सैनिकोंने मुझे देख लिया। वे मुझपर एक साथ टूट पड़े। उनसे किसी प्रकार प्राण बचाकर मैं यहाँ आया। महाराज! आज मुझे पता लगा कि आप कितने दयालु हैं। आपने अपनी पगड़ी फाड़कर मुझ-जैसे शत्रुके घाव बाँधे और मेरी सेवा की। आप मेरे अपराध क्षमा करें। अब मैं आजीवन आपका सेवक बना रहूँगा।'

उस व्यक्तिको नगरमें भेजनेका प्रबन्ध करके राजाने साधुसे पुनः अपने प्रश्नोंका उत्तर पूछा तो साधु बोले—'राजन्! आपको उत्तर तो मिल गया। सबसे महत्त्वपूर्ण समय वह था, जब आप मेरी फूलोंकी क्यारी खोद रहे थे; क्योंकि यदि आप उस समय क्यारी न खोदकर लौट जाते तो यह व्यक्ति आपपर आक्रमण कर देता। सबसे महत्त्वपूर्ण काम था इस व्यक्तिकी सेवा करना; क्योंकि यदि सेवा करके आप इसका जीवन न बचा लेते तो यह शत्रुता चित्तमें लेकर मरता और पता नहीं इसकी तथा आपकी शत्रुता कितने जन्मोंतक चलती रहती और सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मैं हूँ, जिसके द्वारा शान्ति पाकर तुम लौटोगे।'

नरेशने मस्तक झुकाया। साधु बोले—'ठीक न समझे हो तो फिर समझ लो कि सबसे महत्त्वपूर्ण समय 'वर्तमान समय' है, उसका उत्तमसे उत्तम उपयोग करो। सबसे महत्त्वपूर्ण वह काम है, जो वर्तमानमें तुम्हारे सामने है। उसे पूरी सावधानीसे सम्पन्न करो। सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वह है, जो वर्तमानमें तुम्हारे सम्मुख है। उसके साथ सम्यक् रीतिसे व्यवहार करो।'

'कल्याण' का आगामी ९०वें वर्ष (सन् २०१६ ई०)-का विशेषाङ्क

'गंगा-अङ्क'

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥

(श्रीरामचरितमानस)

गंगाधर भगवान् शम्भुने वेदोंका सार भाग लेकर कृपा करके लोककल्याण तथा जगत्की रक्षाके लिये सरिद्रूपा गंगाजीका प्राकट्य किया है। उन्होंने श्रुतिके अक्षरोंको निचोड़कर उसी रससे भगवती गंगाकी उद्भावना की है। शिवात्मिका जलरूपा जगद्धात्री गंगा भगवान् शिवकी परामूर्ति हैं। वे समस्त ब्रह्माण्डोंकी अधिष्ठात्री, विद्यारूपिणी, आरोग्यदायिनी, करुणामयी, आनन्दमयी, मंगलमयी, कर्म, भक्ति एवं ज्ञानकी त्रिवेणीरूपा, विशुद्ध धर्मरूपिणी तथा भुक्ति-मुक्तिदायिनी हैं। जैसे पुष्पकी सुरभि चतुर्दिक् परिवेशको सुवासित कर देती है, वैसे ही गंगा सर्वत्र पावनताका संचार करती हैं। गंगा हमारे कर्मोंकी साक्षी हैं। एक जीवन्त दैवीशक्तिके रूपमें, ममतामयी माके रूपमें, परम तीर्थके रूपमें वे सर्वत्र व्याप्त हैं।

भगवती गंगाकी कीर्तिकथाका अनन्त विस्तार है। गंगाकी गाथा भारतीय सनातन संस्कृति एवं सभ्यताकी गौरवगाथा है। आधिभौतिक स्तरपर ये सदानीरा हैं, सतत प्रवाहमयी चैतन्यधारा हैं, आधिदैविक स्तरपर पवित्रता और पुण्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं और आध्यात्मिक स्तरपर ऊर्ध्वगामिनी चेतना, ज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। पुण्यतोया गंगाका माहात्म्य अनिर्वचनीय है। त्रैलोक्यमें जितने तीर्थ हैं, वे सब गंगामें स्थित हैं। गंगा समस्त पार्थिव वस्तुओं, लोकों, तीर्थों तथा सभी सात्त्विक अनुभूतियोंमें व्याप्त हैं, ऐसी व्यापकता केवल ईश्वरमें है, इसीलिये गंगाका ईश्वरत्व है। वे देवमाता हैं, वेदमाता हैं, लोकमाता हैं। सभी तीर्थजलोंमें गंगाका पावन अधिष्ठान है। गंगाके स्मरणमात्रसे समस्त कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, अन्तःकरण पवित्र, निर्मल, सात्त्विक तथा प्रकाश-पुंजसे उद्दीप्त हो उठता है तथा मलिन वासनाओंके तन्तु सहज ही क्षीण हो जाते हैं। गंगाका स्मरण, दर्शन, स्पर्श, मार्जन, स्नान (अवगाहन) तथा पान अमोघ फलदायी है। गंगास्नानसे सद्यः स्फूर्ति, चैतन्यता तथा आरोग्यादि लाभ प्रत्यक्ष ही दिखायी देते हैं। गंगाजल बाह्य मल एवं आन्तरिक मल—दोनोंका नाशक, बुद्धिवर्धक तथा जठराग्निको उद्दीप्त करनेमें सहज शक्तिदायी है। भगवती गंगाका अवतरण पापनाश तथा परोपकारके लिये हुआ है। गंगाकी सन्निधिमें जो भी जप, तप, पूजा, अनुष्ठान आदि कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं।

ब्रह्मद्रवस्वरूपा गंगा हमारी अस्मिताकी पहचान हैं, न केवल हिन्दू, अपितु सभी धर्मावलम्बी गंगाका आदर करते हैं। गंगा स्वयं श्रद्धारूपा हैं। गंगाकी सच्ची सेवा, सच्ची पूजा, उनके प्रति श्रद्धा एवं आस्थाको आत्मसात् करना है। गंगा चिन्मय आलोकको प्रदान करती हैं और भवसागरसे सहज ही तार देती हैं।

विडम्बना है कि ऐसी लोकोत्तर महिमा तथा सर्वविध उपयोगिता होते हुए भी वर्तमानमें गंगा एवं यमुनाका स्वरूप मलिनतर होता जा रहा है। इसमें हेतु चाहे जो भी हो—मलप्रक्षेप हो अथवा जलके स्वाभाविक प्रवाहमें अवरोध हो जाना हो अथवा आर्थिक विकास हो—यह बड़ी ही दुःखद, चिन्ताजनक एवं सोचनीय स्थिति है। ऐसा न हो, इसके लिये सभीको विशेष रूपसे सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है। तभी हम अपनी थातीको भविष्यके लिये सँजोकर रख सकेंगे और गंगाके औषधीय गुणों एवं आध्यात्मिक लाभोंको प्राप्त कर सकेंगे। हमारा यह पावन कर्तव्य है कि हम तीर्थजलोंको दूषित न करें। जीवनदायिनी गंगाके प्रति होती जा रही अनास्था, वर्तमानके आर्थिक विकासवाद, विज्ञानवाद तथा भौतिक प्रगतिवादने गंगाके यथार्थ स्वरूपको ही मलिन एवं अस्तित्वविहीन बना दिया है, ऐसेमें गंगानिर्मलीकरणकी प्रक्रियाएँ एवं चेष्टाएँ तो स्वयं पंक लगाकर उसे धोनेके समान प्रतीत

होती हैं। न केवल गंगा, अपितु यमुना, नर्मदा आदि पुण्यतोया नदियाँ, तीर्थ, वन, पर्वत—यहाँतक कि समूचा पर्यावरण, समस्त प्रकृति ही प्रदूषणसे व्याप्त होती जा रही है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पाँचों तत्त्व अतिमानवीय चेष्टाओंके कारण विकृत होते जा रहे हैं। धर्म एवं अध्यात्मके इन स्रोतों की उपेक्षा एवं इनके अत्यधिक दोहनके परिणामस्वरूप आज समूचे विश्वकी, मानवीयताकी एवं प्राणिजगत्‌की जो स्थिति हो रही है, वह किसीसे छिपी नहीं है। इसी कारण मानव आज अपनेको सब प्रकारसे साधनसम्पन्न समझते हुए भी सर्वथा असहाय एवं अशक्त-सा हो गया है, आध्यात्मिक बल क्षीण हो जानेसे उसका आत्मबल भी लुप्त होता-सा दीखता है।

इन्हीं सब बातोंको दृष्टिगत रखते हुए इस वर्ष सन् २०१६ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें **'गंगा-अङ्क'** प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है, इसमें मुख्यरूपसे वर्तमानमें हो रही पर्यावरणकी दुर्दशा, उपभोक्तावादके दुष्परिणाम, तीर्थोंकी विकृति, नदियोंका प्रदूषण, देवनदी गंगाका तीर्थत्व, उसका धार्मिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व, आरोग्यप्राप्तिमें गंगाकी उपयोगिता, गंगावतरणके रोचक आख्यान, गंगोपासनाका स्वरूप, गंगाका इतिहास, गंगाका भूगोल, गंगा एवं अर्थशास्त्र, गंगाजल का वैशिष्ट्य, गोमुखसे गंगासागरतक गंगायात्रा, गंगाजल और विज्ञान, गंगाके यशोगायक, गंगाके तटवर्ती तीर्थों तथा नगरोंका इतिहास, गंगाका यमुना एवं अन्य सरिताओंके साथ संगम एवं उसका माहात्म्य, काशीकी उत्तरवाहिनी गंगा तथा गंगाजीका साहित्य, वर्तमानमें गंगाकी दशा और उसके निवारणके उपायोंकी समीक्षा एवं इस सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण सुझाव भी प्रस्तुत करनेका विचार है।

हमारा यह मानना है कि गंगा आदि तीर्थोंके प्रति हमारी प्राचीन आस्था जग जाय एवं उनके प्रति सच्ची श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाय तो स्वतः गंगा निर्मल हो जायगी। इसी दृष्टिसे हम आदरणीय संत-महात्माओं, आचार्यों, गण्यमान्य विद्वान् मनीषी लेखकों तथा विशिष्ट पर्यावरणविदोंसे इस सम्बन्धमें सहयोगकी प्रार्थना करते हैं। विशेषाङ्ककी एक संक्षिप्त सूची दिशा-निर्देशके रूपमें दी जा रही है। हमारी प्रार्थना है कि सूचीमें उल्लिखित विषयों अथवा सूचीसे अतिरिक्त सम्बद्ध विषयोंपर अपनी महत्त्वपूर्ण सामग्री १५ अगस्त २०१५ ई० तक भेजनेकी कृपा करें। विषयसे सम्बद्ध यदि कोई रंगीन चित्र, सादे चित्र आदि उपलब्ध हों तो उनका भी यथासाध्य उपयोग किया जा सकता है।

विनीत—

राधेश्यामं खेमका

(सम्पादक)

विषय-सूची

[क] गंगा-तत्त्वदर्शन

१- 'गंगा' पदकी निरुक्ति और अर्थविस्तार।

२- गंगाका त्रिविधरूप—

(क) आधिभौतिक स्वरूप—जलरूप।

(ख) आधिदैविक स्वरूप—देवीरूप (गंगाविग्रह)।

(ग) आध्यात्मिक स्वरूप—चिन्मय मुक्तिरूप।

३- गंगा—साक्षात् ब्रह्मद्रव

४- गंगाका तीर्थत्व एवं माहात्म्य।

५- तीर्थोंका त्रैविध्य—

(क) जंगम तीर्थ—साधु-संत, महात्मा, ब्राह्मण।

(ख) मानस तीर्थ—सत्य, दया, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, सरलता, संयम आदि।

(ग) भौम (स्थावर) तीर्थ—भूमिके प्रभाव एवं जलके तेजसे प्रादुर्भूत तीर्थ।

६- तीर्थयात्राकी शास्त्रीय विधि और तीर्थोंके विधि-निषेध।

७- 'नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजम्।'
८- अनादि सृष्टिमें जलका सर्वप्रथम प्रादुर्भाव—'अप एव ससर्जादौ।'
९- गंगाधर भगवान् शिव और गंगा।
१०- गंगा और उमा।
११- हैमवती गंगा।
१२- विष्णुचरणनख और विष्णुपदी गंगा।
१३- ब्रह्मद्रवमयी गंगा।
१४- शिवजटाजूट और गंगा।
१५- राधाकृष्णमयी गंगा।
१६- राजर्षि भगीरथ और गंगा।
१७- जाह्नवी और गंगा।
१८- गंगावतरणकी विभिन्न कथाएँ।
१९- वामनावतार और गंगा।
२०- त्रिपथगामिनी गंगा।
२१- 'स्रोतसामस्मि जाह्नवी।'
२२- गंगा—वेदमाता, देवमाता एवं लोकमाता।
२३- गंगाका इतिहास।
२४- गंगा और अर्थशास्त्र।
२५- गंगाके माहात्म्यकी पौराणिक गाथाएँ।
२६- गंगाका साक्षीभाव।
२७- गंगापर साहित्य।
२८- गंगाके यशोगायक [देवगण, मन्त्रद्रष्टा ऋषि-महर्षि, वेदव्यास, महर्षि वाल्मीकि, शंकराचार्य, कालिदास, सूर, तुलसी, पं० जगन्नाथ, कविवर गुमानी, रहीम, भारतेन्दु हरिचन्द्र, रत्नाकर आदि]।

[ख] गंगोपासना एवं गंगासेवा

१- गंगोपासनाका यथार्थ स्वरूप।
२- गंगाजीके विविध मन्त्र और ध्यानस्वरूप।
३- गंगासेवाके विविध आयाम।
४- गंगासम्बन्धी विविध स्तोत्र, शतनाम तथा सहस्रनाम।
५- गंगाकी सन्निधिमें किये गये कर्म अमोघ फलदायी।
६- गंगानामस्मरण, दर्शन, स्पर्श, आचमन, मार्जन, स्नान (अवगाहन), अनुसरण, अनुमोदन आदिकी महिमा।
७- गंगास्नानकी शास्त्रीय विधि।
८- शास्त्रोंमें परिगणित गंगामें निषिद्ध कर्म।
९- गंगा-मृत्तिकाका वैशिष्ट्य।
१०- गंगाके तटकी वायुकी महिमा।
११- गंगाके तट, क्षेत्र तथा गर्भकी परिभाषा।
१२- 'गंगायां घोषः' का लाक्षणिक अर्थ।
१३- गंगाकी सन्निधिमें शवदाह तथा गंगामें अस्थिप्रक्षेपकी महिमा।
१४- गंगासे सम्बद्ध व्रतोपवास एवं अनुष्ठान।
१५- गंगासप्तमी, गंगादशहराव्रत और गंगापरिक्रमा-व्रत।
१६- गंगामें दीपदानकी महिमा।
१७- गंगापूजन (गंगापुजैया)।
१८- दूसरेके निमित्त गंगामें स्नान।
१९- प्रायश्चित्त-विधानोंमें गंगाजलकी महिमा।
२०- गंगाजीके प्राचीन मन्दिर।
२१- गंगासम्बन्धी संस्मरण, यात्रावृत्तान्त तथा सत्य घटनाएँ।

[ग] गंगाका भूगोल और काशी-माहात्म्य

१- गंगोत्री, यमुनोत्री और गोमुख।
२- गंगायात्रा—गोमुखसे गंगासागरतक।
३- हिमालय और गंगा।
४- गंगाकी भौगोलिक यात्रा।
५- गंगाके तटवर्ती प्रमुख तीर्थों एवं देवालयोंका माहात्म्य एवं परिचय।
६- गंगाके तटवर्ती प्रमुख नगरों एवं ग्रामोंका इतिहास।
७- सप्तसरितादर्शन—गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी।
८- आदिगंगा गोमती और गौतमी गंगाका माहात्म्य।
९- भागीरथी गंगा और उसकी सहायक नदियाँ।
१०- प्रयाग, पंचप्रयाग और सप्तप्रयाग।
११- गंगाके तटपर लगनेवाले मेले।
१२- काशीमाहात्म्य और काशीका इतिहास
१३- काशी और उत्तरवाहिनी गंगा।
१४- भगवान् विश्वनाथ और भगवती गंगा।
१५- काशीमें पंचगंगा तथा असी और वरुणा-संगम।
१६- काशीमें गंगाके घाट।

१७- काशीका दीपदान-महोत्सव (देवदीपावली) तथा गंगा-आरती।

१८- चना चबैना गंगजल जो पुरवै करतार। काशी कबहुँ न छोड़िये विश्वनाथ दरबार॥

१९- 'काश्यां मरणान्मुक्तिः।'

[घ] गंगा और आरोग्य

१- 'औषधं जाह्नवीतोयम्।'

२- गंगास्नान और त्रिविध (दैहिक, मानस और आध्यात्मिक)-आरोग्यकी प्राप्ति।

३- रोगोपचारमें गंगास्नान, गंगाजल एवं गंगातटपर निवासकी महिमा।

४- गंगावायुसेवनकी उपयोगिता और मानस-उपचार।

५- आयुर्वेदकी दृष्टिसे गंगाजलका विश्लेषण और उसमें निहित तत्त्व।

६- स्नान-विज्ञान और गंगाजल।

७- औषधनिर्माणमें गंगाजलकी उपयोगिता।

८- गंगा-बालुकाका वैशिष्ट्य।

९- विज्ञानकी दृष्टिमें गंगाजल और गंगास्नान।

[ङ] सत्साहित्यमें गंगा-दर्शन

१- वैदिक संहिताओंमें गंगा-माहात्म्य।

२- ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदोंमें गंगातत्त्वनिरूपण।

३- स्मृतियों तथा निबन्धग्रन्थोंमें गंगासाहित्य।

४- पुराणोंमें उपलब्ध गंगाका विशाल वाङ्मय।

५- आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणका गंगोपाख्यान।

६- महाभारतमें उपलब्ध गंगावतरणकी कथा।

७- महाकवि कालिदासप्रतिपादित गंगामहिमा।

८- पण्डितराज जगन्नाथकी गंगाभक्ति।

९- गोस्वामी तुलसीदासनिरूपित गंगाकी यशोगाथा।

१०- हिन्दी साहित्य और गंगा-दर्शन।

११- लोकभाषा और लोकसाहित्यमें गंगा-निरूपण, लोकगीतोंमें गंगागाथा—गंगाका लोकसाहित्य।

१२- योग-साधनामें गंगा-यमुना-सरस्वती (त्रिवेणी)-का निर्वचन।

१३- तान्त्रिक वाङ्मयमें गंगाका स्वरूप।

१४- आयुर्वेदमें गंगाजलका औषधीय उपचार।

१५- फारसी साहित्यमें गंगा-निरूपण।

१६- कविवर रहीमका गंगाप्रेम।

१७- ज्योतिषशास्त्रमें निर्दिष्ट तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्नानपरक विविध योग।

१८- अंग्रेजोंकी दृष्टिमें गंगा।

१९- स्थापत्यकला और मूर्तिकलामें गंगाका चित्रण।

२०- मुद्राओं (सिक्कों)-में गंगाके विविध स्वरूपोंका अंकन।

[च] गंगा और पर्यावरण

१- प्रकृतिके पंचविध सोपान—पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश।

२- पंचदेवोंके अधिदेव और पर्यावरण।

३- पर्यावरण और प्राणिजगत्का अन्तःसम्बन्ध।

४- पर्यावरण-शुद्धि और मानवजीवन।

५- पर्यावरण-संरक्षणमें पुण्यतोया नदियोंका अवदान।

६- विज्ञान एवं प्रकृतिरक्षण।

७- पर्यावरणरक्षिका हिमसुता गंगा।

८- गंगा और मानवका आर्थिक विकास।

९- औद्योगिक प्रदूषण और जल एवं वायुतत्त्वकी स्थिति।

१०- गंगाप्रदूषणके कारण और निवारणके उपाय।

११- मृदासंरक्षणके कतिपय उपाय।

१२- गंगानिर्मलीकरणके सम्बन्धमें वर्तमानमें हो रहे प्रयत्नोंकी समीक्षा।

१३- गंगाप्रदूषणका इतिहास।

१४- गंगाप्रवाह एवं गंगाजलकी वर्तमान स्थिति।

१५- भौतिक विकास और आध्यात्मिक विकास (उन्नति)-का सामञ्जस्य।

[छ] गंगा और अध्यात्मविज्ञान

१- गंगा, गीता, गायत्री, गाय और गोविन्द—'गकाराः पञ्च दुर्लभाः।'

२- ज्ञानगंगामें अवगाहन।

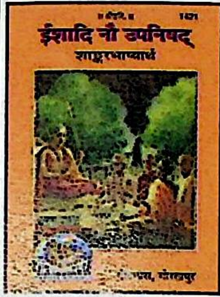
३- भौतिक त्रिवेणी और आध्यात्मिक त्रिवेणी।

४- गंगा—मुक्तिका साधन भी और साध्य भी।

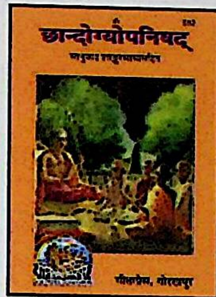
५- 'रसो वै सः' परमात्मा रसस्वस्वरूप (जलरूप) हैं।

६- 'गंगे तव दर्शनान्मुक्तिः।'

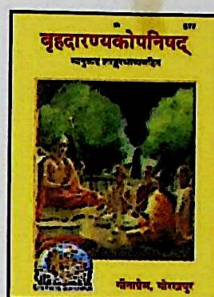
गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित ग्यारह उपनिषद्



कोड 1421 मू० ₹१८०



कोड 582 मू० ₹१२०



कोड 577 मू० ₹१८०

ईशादि नौ उपनिषद् (कोड 1421)— गीताप्रेससे **शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थके** साथ अलग-अलग पुस्तकरूपमें पूर्व प्रकाशित ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्को इस पुस्तकमें पाठकोंके सुविधार्थ एक साथ प्रकाशित किया गया है। सजिल्द, मूल्य ₹१८०, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹ ३५ अतिरिक्त।

छान्दोग्योपनिषद् (कोड 582)—सामवेदीय तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत वर्णित इस उपनिषद्में क्रमबद्ध और युक्तिपूर्ण ढंगसे कर्म तथा ज्ञानका सजीव वर्णन है। तत्त्वज्ञान और उपासनाकी इसमें विस्तृत चर्चा है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य ₹१२० डाक एवं पैकिंगखर्च ₹३० अतिरिक्त।

बृहदारण्यकोपनिषद् (कोड 577)—यजुर्वेदके काण्वी शाखामें वर्णित यह उपनिषद् कलेवरकी दृष्टिसे बृहत् तथा वनमें अध्ययन किये जानेके कारण आरण्यक कहलाता है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य ₹१८० डाक एवं पैकिंगखर्च ₹३५ अतिरिक्त।

नोट— ग्यारह उपनिषदोंका पूरा सेट मँगवानेके लिये पुस्तक मूल्य, डाक एवं पैकिंगखर्चसहित ₹ ५४५ भिजवायें। अलग-अलग उपनिषद् भी मँगवा सकते हैं।

उपनिषद्-अङ्क (कल्याण-वर्ष २३, सन् १९४९ ई०) सचित्र, सजिल्द, कोड 659, ग्रन्थाकार— इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों-(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर-) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित संकलन है। इसके अतिरिक्त इसमें ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर तथा महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणी भी दी गयी है। मूल्य ₹२००, डाकखर्च ₹५०

महाभारत (सटीक) कोड 728, ग्रन्थाकार—छः खण्डोंमें सेट—महाभारत भारतीय संस्कृतिका अद्भुत महाग्रन्थ है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। इस महाग्रन्थमें उपनिषदोंका सार, इतिहास, पुराणोंका उन्मेष, निमेष, चातुर्वर्णका विधान, पुराणोंका आशय, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदिका परिमाण, तीर्थों, पुण्य देशों, नदियों, पर्वतों, समुद्रों तथा वनोंका वर्णन होनेके कारण यह अनन्त गूढ़, गुह्य रत्नोंका भण्डार है। मूल्य ₹१९५०, डाकखर्च ₹२२५

महाभारतके विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू०₹	डाकखर्च
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३२५	४५
33	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३२५	४५
34	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३२५	४५
35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३२५	५०
36	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	३२५	४५
37	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३२५	४५

संक्षिप्त महाभारत (दो खण्डोंमें) कोड 39, 511, ग्रन्थाकार—मूल्य ₹४४०, डाकखर्च ₹६० (गुजराती, बँगला, तेलुगु भी)

मासिक 'कल्याण' kalyan-gitapress.org पर मुफ्त पढ़े।

प्र० ति० २०-४-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

अब ग्रन्थाकार रंगीनमें



आदर्श ऋषि-मुनि—

(कोड 1986)—इस पुस्तकमें गोस्वामी तुलसीदास, श्रीसूरदास, मीराँबाई, सनकादि, देवर्षि नारद, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र आदि १६ ऋषि-मुनियोंके चरित्रका प्रकाशन किया गया है। प्रत्येक चरित्रके साथ उनके रंगीन चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ₹२५



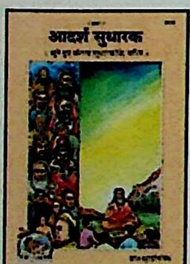
आदर्श सम्राट्—

(कोड 2022)—इस पुस्तकमें सम्राट् अशोक, सम्राट् समुद्रगुप्त, बादशाह अकबर, महाराणा प्रताप, शिवाजी, महारानी लक्ष्मीबाई आदि ३२ आदर्श राजाओंके सुन्दर एवं संक्षिप्त जीवन-परिचयके साथ कविताओंमें उनके जीवनसे शिक्षाका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹२५



आदर्श सन्त—

(कोड 2026)—इस पुस्तकमें संत ज्ञानेश्वर, श्रीनामदेव, संत एकनाथ, समर्थ स्वामी रामदास, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ३२ महान् संतोंके संक्षिप्त परिचयको रंगीन चित्रोंके साथ सुन्दर आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹२५



आदर्श सुधारक—

(कोड 2028)—इस पुस्तकमें महात्मा जरथुस्त्र, हजरत मूसा, महात्मा सुकरात, दार्शनिक प्लेटो, महात्मा टालस्टाय, राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ३२ समाज सुधारकोंके जीवन-परिचयको सुन्दर आर्टपेपरपर प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹२५

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य

कोड	पुस्तक-नाम		मू० रु०
	बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ		
1690	बालकके गुण	ग्रन्थाकार	३५
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	"	२५
1692	बालककी दिनचर्या	"	२५
1693	बालकोंकी सीख	"	२५
1694	बालकके आचरण	"	२५
1691	बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार	१५
1437	वीर बालक	"	२०
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	"	१५
1450	सच्चे और ईमानदार बालक	"	१५
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	"	१५
1448	वीर बालिकाएँ	"	१५
	सत्य घटनाओंपर आधारित कहानियाँ		
159	आदर्श उपकार		२०
160	कलेजेके अक्षर		१७
161	हृदयकी आदर्श विशालता		२०
162	उपकारका बदला		२०
163	आदर्श मानव हृदय		१७
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा		२०
165	मानवताका पुजारी		१७
166	परोपकार और सच्चाईका फल		१७
510	असीम नीचता और असीम साधुता		१७
	रोचक कहानियाँ		
1669	पौराणिक कहानियाँ		१५
1624	पौराणिक कथाएँ		१५
1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ		२५
1093	आदर्श कहानियाँ		१५
137	उपयोगी कहानियाँ		१५
147	चोखी कहानियाँ		१०
122	एक लोटा पानी		२०
1308	प्रेरक कहानियाँ		१०
680	उपदेशप्रद कहानियाँ		१५
1688	तीस रोचक कथाएँ		१५
1782	प्रेरणाप्रद कथाएँ		२०
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ		१०